ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – 570 006.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - II

आधुनिक हिन्दी काव्य

जयशंकर प्रसाद और

' कामायनी '

Block - 5

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

हिन्दी एम .ए . प्रीवियस - द्वितीय पत्र

KSOU
MGM -06

Hindi
Paper / Course - II

ब्लाक सं

5

" आधुनिक हिन्दी काव्य "

Unit No. 17 to 19 अनुक्रमणिका : -	Page No.

इकाई 17 कामायनी का चिंता सर्ग और मनु का चरित्र चित्रण 1 - 28

इकाई 18 श्रद्धा सर्ग और श्रद्धा का चरित्र चित्रण 29 - 66

इकाई 19 रहस्य सर्ग का व्याख्यात्मक विवेचन 67 - 82

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति तथा अध्यक्ष
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

डॉ. शशिधर. एल. जी
रीडर, हिन्दी विभाग,
मैसूर विश्वविद्यालय,
मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

संपादक

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्ष , हिन्दी विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

संयोजेक

पाठ्यक्रम की लेखिका — **ब्लाक - 5**

डॉ. विमला. एम.
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बेंगलूर विश्व विद्यालय
बेंगलूर

इकाई 17 - 19 तक

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित।
सभी अधिकार सुरक्षित। कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है।
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से ***रजिस्ट्रार (प्रशासन)*** *द्वारा मुद्रित व प्रकाशित।*

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थि - बन्धु ,

ब्लाक चार के अंतर्गत आपने इकाइ 13 में ' कुरुक्षेत्र काव्य में चरित्र चित्रण ' इकाई 14 में ' कुरुक्षेत्र का काव्य-सौष्ठव ' इकाई 15 में ' जयशंकर प्रसाद का कवि रूप ' तथा इकाई 16 में ' कामायनी का सार ' के संबंध में अध्ययन किया है।

प्रस्तुत ब्लाक के अंतर्गत इकाइ 17 में ' कामायनी का चिंता सर्ग और मनु का चरित्र चित्रण ' इकाई 18 में ' श्रद्धा सर्ग और श्रद्धा का चरित्र चित्रण ' तथा इकाई 19 में ' रहस्य सर्ग का व्याख्यात्मक विवेचन ' संबंधी विषय का अध्ययन करेंगे।

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्ष ,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

इकाई 17
कामायनी का चिंता सर्ग और मनु का चरित्र चित्रण

इकाई की रूप रेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 चिंता सर्गः कथासार

17..3 चिन्ता सर्ग की संक्षिप्त समीक्षा

17.4 मनु का चरित्र चित्रण

- 17.4.1 देवता मनु
- 17.4.2 ऋषि मनु
- 17.4.3 मनु का गृहस्थ जीवन
- 17.4.4 प्रजापति मनु
- 17.4.5 आनंदवादी मनुः

17.5 मनु का सांकेतिक व्यक्तित्व

17.6 निष्कर्श

17.7 बोध प्रश्न

17.8 नमूने का उत्तर

17.9 सहायक पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में चिंता सर्ग और मनु का चरित्र - चित्रण संबंधी विषय का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप -

- चिंता सर्ग की कथा वस्तु से अवगत हो जाएँगे।
- चिंता सर्ग की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा कर सकेंगे।
- मनु के चरित्र चित्रण को प्रस्तुत कर सकेंगे।
- मनु के गृहस्थ जीवन को समझ सकेंगे।
- मनु के सांकेतिक व्यक्तित्व को पहचान सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

प्रसाद ने अधिकांश सर्गों का नाम मनोवृत्तियों के आधार पर ही रखे हैं। अतः सबसे पहले चिन्ता नामक मनोवृत्ति का चित्रण करके आपने भारतीय ग्रन्थों से सहमत होकर यह सूचित किया है कि चिंतन या मनन मन का मूल व्यापार है।

चिंता में मानसिक हलचल अधिक रहती हैं और कर्म की प्रवृत्ति का अभाव रहता है यही बात कामायनी के चिंता सर्ग में भी मिलती है । यहाँ मनु के सामने न तो कोई योजना है और न भविष्य के निर्माण का प्रश्न । भारतीय शास्त्रों में लिखा भी हैं कि ऐश्वर्य भ्रष्ट हो जाने पर मन में चिंता उत्पन्न होती है। चिंता सर्ग में चिंता उत्पन्न होते ही मनु का मन भी अपने ऐश्वर्य के भ्रष्ट हो जाने पर ऐसी ही दशा में दिखलाया गया है ।

पाश्वान्त मनोविज्ञान वेत्ता भी, यही कहते है कि वास्तविक कर्म के अभाव में चिंता का उदय होता है । इस प्रकार पूरे सर्ग में चिंता की उत्पत्ति, उसका स्वरूप और उसके कार्यों की सुंदर व्याख्या की गई है ।

17.2 चिंता सर्गः कथासार

हिमालय के उत्तुंग शिला की शीतल छाया में बैठा हुआ एक पुरुष (मनु) भीगे से प्रलय का प्रवाह देख रहे हैं । उनकी पलकें भीगी हैं । उनका मुख चिंता से मुरझाया हुआ है । नीचे अपार जल लहरा है, ऊपर सघन हिम ठिठुरा हुआ है ! एक ही तत्त्व के दो भिन्न भिन्न रूपों का यह दर्शन एक अजीब रहस्य की सूचना दे रहा है - रहस्य जिसे जड़ भी कह सकते हैं और चेतन भी । पुरुष (मनु) का शरीर गठा हुआ था, दृढ मांस-पेशियों में आपार वीर्य ऊर्जस्वित हो रहा था। स्फीत शिराएँ स्वस्थ रक्त के द्रुत संचार को वहन किए हैं । इस प्रकार इस चिन्ताक्रान्त मुख में पौरुष ओतप्रेत है, उसके हृदय देश में उपेक्षमय यौवन का स्त्रोत बह रहा है। इस प्रकार 'कामायनी' का कवि पाठक की मानसिक वृत्तियों आदि युग की ओर एकाग्र करता है, जब कि जीव-सृष्टि पहली बार प्रलय का दृश्य देख रही हो ।

धीरे-धीरे वह जलप्लाबन उतरने लगा है और धरती भी पानी से ऊपर दिखाई दे रही है । महावट से बँधी हुई एक नौका अब जमीन पर है । मनु स्वयं

यह सोच रहे हैं कि अचानक यह कितना परिवर्तन हो गया । वे बार बार यह भी सोचते हैं कि अब क्या होगा ? उन्हें यह एकान्त भी असहनीय जान पड़ता है । धीरे-धीरे मनु के मन में एक अभाव का आभास होता है, और अभाव की बालिका चिंता का उनके मन में उदय होता है । चिंता सर्पिणी के समान है जो समस्त विश्व को अपना बिल समझती है । अब मनु उसी चिंता को सम्बोधित कर कहते हैं कि हृदय गगन के धूमकेतु सी यह चिन्ता मुझसे कहाँ तक मनन कराती रहेगी । उनका कहना है कि क्या मैं उस अमर देव जाति का वंशज होते हुए भी इसी प्रकार चिन्ता करते हुए मरूँगा ।

अंत में इस चिन्ता से तंग आकर मनु विस्मृति का आवाहन करते हैं । उसको यही अभिलाषा होती है कि यह चेतनता किसी प्रकार दूर हो जाय । वे समझ जाते हैं कि स्मृति ही दुःख का स्थायीकरण हैं । विगत विभवों एवं सुख की स्मृति होने के कारण उनका दुःख बढ़ता जाता है । मनु को यह भी याद आता है कि वे स्वयं उन देवताओं के नेता थे, लेकिन प्रकृति ने आज उससे अपना बदला ले लिया हैं। अमरत्व के अहंकार में भूले हुए देवताओं का मानमर्दन देखकर मनु यहीं सोचते हैं कि सब कुछ स्वप्न के समान शून्य ही हैं । अब उन सुरबालाओं का श्रृंगार, उषा सी यौवन की मुस्कराहट और भ्रमरों का सा विहार कहाँ गया ? साथ ही वासना की वह उद्वेलित सरिता कहाँ सूख गई । चिरकिशोर और नित्य विलासी देवों का मधुपूर्ण वसंत भी कहाँ चला गया ।

इस प्रकार मनु देवताओं के मिथ्या अहंकार, दम्भ, विलासिता आदि के बारे में बार बार विचार करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अमरता सत्य नहीं हैं, मृत्यु ही सत्य है, जो सृष्टि के कण कण में छिपी हुई है । जीवन भी जिसका एक छोटा सा तुच्छ अंश मात्र है, जो मृत्यु की गोद में उसी तरह लीन हो जाता है, जिस तरह नीले बादलों में चमक कर बिजली विलीन हो जाती है।

इधर मनु देवजाति के विनाश के बारे में सोच रहे थे कि उधर विस्तृत जल समूह भाप बनकर उडने लगा । अब मंगल, चन्द्र, सूर्य और ग्रह-उपग्रह भी अपनी पूर्वगति के अनुसार आकाश में चक्कर लगाने लगे थे और प्रलय रूपी रात्री के अंत तथा प्रभात की सुन्दर बेला के उदय की आशा हो चली थी । घोर रात्री के स्थान पर प्रभात की सुनहरी छटा दिखाई देने लगी ।

17.3 चिंन्ता सर्ग की संक्षिप्त समीक्षा :

भारतीय आचार्यो ने ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण देना आवश्यक माना है । कतिपय समीक्षक कहते हैं कि प्रसादजी ने कामायनी में मंगलाचरण का प्रयोग किए बिना ही कथा का आरम्भ पहले ही छंद से कर दिया हैं । विचार पूर्वक देखा जाय तो यह मत युक्ति संगत नही जान पड़ता, क्योंकि कामायनी कथा के आरम्भिक छन्द में मंगलाचरण की सामग्री बिद्यमान है । स्वयं "हिमगिरि' नामक पहला शब्द तो देवतावाची शब्द है । 'हिमगिरि' की उत्तुंग शिखर से ऐश्वर्य, कल्याण आदि का; शीतल छाँह से शान्ति एवं आनंद का; पुरुष से प्रलय प्रवाह देखने में मनस्कामना पूर्ति का संकेत मिलता है । अतः यह वस्तु निर्दशात्मक मंगलाचरण हैं ।

इस चिंता सर्ग में प्रसाद जी ने चिन्ता नामक मनोभाव की दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक व्याख्या प्रस्तुत की है । एकाकी जीवन में चिन्ता का उदय किस प्रकार होता है ? वह किस प्रकार व्यक्ति को व्यथित करती है ? आदि बातों की चर्चा कवि ने स्वाभाविक रूप से की है ।

ग्रन्थ के आरम्भ में ही कथानायक मनु को चिंतावस्था में निरूपित कर प्रसाद जी ने कथावस्तु में नैसर्गिकता का समावेश किया है । यह स्वाभाविक है कि भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता व्यक्ति को बहुत व्याकुल कर देती है।

प्रारम्भ में मनु भी अतीत के वैभव का नष्ट होने से और भावी जीवन का निश्चय न होने से अत्यंत चिंताग्रस्त दिखाई देते है ।

कामायनी में मनु की चिंता का कारण भी अभाव ही है । उन्हें देवजाति का अभाव या तिरोभाव खूब खलता है । मनु अपने जीवन में पहली बार चिंताग्रस्त हो जाते हैं । अतएव चिंता को सम्बोधित कर कहते है ।

"ओ चिंता की पहली रेखा"

जीवन-द्रष्टा प्रसाद जी को चिंता की विकरालता विश्व वन की व्याली एवं ज्वालामुखी-विस्फोट की प्रथम कम्प के रूप में प्रतीत होती है । इसी आधार पर वे कहते हैं -

अरी विश्व वन की व्याली
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण
प्रथम कम्प सी मतवाली ।।

हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि मनु की चिंता का मुख्य कारण अभाव ही है । इस अभाव का बोध करने वाले अन्य शब्दों की ओर भी प्रसाद जी ने इंगित किया है ।

मौन ! नाश ! विध्वंस । अँधेरा ।
शून्य बना जो प्रकट अभाव,

इसी प्रकार -

धू धू करता नाच रहा था,
अनस्तित्व का ताण्डव नृत्य ;

वस्तुतः मौन, नाश, विध्वंस आदि परोक्ष रूप से अभाव के ही द्योतक है। प्रसादजी अभाव जन्य चिन्ता से भली भाँति परिचित थे । अतः उन्होंने निम्नलिखित छंद में चिंता को अभाव की चपल बालिका और प्राणियों से दौड-धूप करानेवाली स्पन्दन शक्ति भी कहा है ।

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा ।
हरी भरी सी दौड धूप, ओ
जल माया की चल रेखा ।

प्रसाद जी के विचार में चिन्ता एक ऐसी प्रबल शक्ति है, जो अमर लोक के निश्चित प्राणियों से भी स्मरण, ध्यान एवं मनन करना कर उन्हें उत्पीडित कर सकती है । इसकी अभिव्यंजना निम्नलिखित छंद में दर्शनीय है -

मनन करावेगी तू कितना ?
उस निश्चिन्त जाति का जीव,
अमर मरेगा क्या ? तू कितनी
गहरी डाल रही है नीव ।।

चिंताग्रस्त हो जाने से व्यक्ति अत्यंत दुखित होता है। अतः प्रसाद ने दुःख का स्पष्ट उल्लेख किया है । मनु कहते हैं -

चिंता करता हूँ मैं जितनी ।
उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती
जाती रेखाएँ दुख की ।

चिंता एक व्याधि है । उससे बल, रूप, उत्साह आदि नष्ट हो जाते है । उनकी झलक मनु की उक्तियों में देखिए-

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी !
अरी आधि मधुमय अभिशाप,
हृदय गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप ।

मनु की चिंता में धर्म और योग समाधि की कोई चर्चा नहीं हैं । दर्शन शास्त्र में चिन्ता के कई नाम हैं । प्रसाद जी ने कतिपय नामों की और भी इंगित किया है ।

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा चिंता,
तेरे है कितने नाम ।

कामायनी के आरंभ में जहाँ इस चिंता शब्द से अभाव की अभिव्यक्ति होती है, वहाँ उत्तरोत्तर स्मरण, ध्यान, मनन, जिज्ञासा, समाधि, धारणा ज्ञान आदि अनेक अर्थों का भी बोध होता रहता है । इन सभी अर्थों का अपना अपना दार्शनिक महत्व हैं । कामायनी में चिन्ता का यह दार्शनिक रूप प्रतिभासित होता है ।

कामायनी में प्रसादजी ने "चिंता" की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत की है । उसे उन्होंने मन के मूल भाव के रूप में प्रतिष्ठित किया है । प्रसाद जी की इस योजना से जहाँ एकओर मूल मनोभाव का विशद विश्लेषण प्रस्तुत होता है, वहाँ दूसरी ओर कामायनी के रूपक तत्व का भी, सूत्रपात होता है । प्रसादजी ने आमुख में जिस मनोवैज्ञानिक इतिहास का संकेत किया है, उसका आरम्भ

चिंता से होता है । हिन्दी साहित्य में प्रथम बार मनोवैज्ञानिक भाव चित्रण करने का श्रेय प्रसादजी को ही प्राप्त है । मनस्तत्व के विचार से वस्तुनिष्ठ चिंता में ही मनु की प्रारम्भिक चिंता को अंतर्भावित किया जा सकता हैं, क्योंकि मनु को प्रलय के ज्ञात भय से चिंता होती है । मनशास्त्रियों के अनुसार चिन्ता का पारिभाषिक अर्थ भय है । वास्तव में भय को चिंता का पारिभाषिक अर्थ न मानकर यदि उसका कारण मान लिया जाता तो अधिक उपयुक्त होगा । ज्ञात भय के कारण ही मनु को चिंता होती है -

वे सब डूबे डूबा उनका
विभव, बन गया पारावार,
उमड रहा हैं देव सुखों पर
दुःख जलधि का नाद अपार ।

एलेग्जन्डर शौन्ड ने मन को मथ देनेवाली उद्विग्नता के रूप में चिंता का जो निरूपण किया है, उसकी यथार्थता का ज्ञान उस समय होता है, जब मनु चिंता को हृदय से लहलहे खेतों पर पड़नेवाली करका-वृष्टि के समान मानते हैं।

आह ! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों पर करका घन सी ।
छिपी रहेगी अन्तरत्म में ।
सब के तू निगूढ़ धन सी ।

मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुसार मनुष्य उस समय चिंता का अनुभव करता है, जब उसकी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने की आशा उलझन में पड़ती है । इस नियम के अनुरूप भाव-चित्रण कामायनी में हुआ हैं ।

वस्तुतः कामायनी में चिंता के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप की जितनी अधिक अभिव्यक्ति हुई हैं, उतनी उसके साहित्यिक रूप की नहीं हुई है । साहित्यिक परिभाषा के अनुसार इष्टवस्तु की अनुपलब्धि से अथवा अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति से चिंता का आविर्भाव होता है । चिंता के इस भाव से मन में संताप उत्पन्न होता है और मुख पर उदासीनता छा जाती हैं । इसका निरूपण भी कामायनी में यत्र-तत्र हुआ है ।

चिंता सर्ग में प्रलयकालीन घटनाओं का चित्रण हुआ है । भारतीय ग्रन्थों के आधार पर कवि ने खंडप्रलय का वर्णन किया है । जेसे - प्रलयकारी पानी बरसने लगा । बिजलियाँ गिरने लगीं । कठोर कुलिश चूर-चूर होने लगे । क्षितिजों के चारों ओर विनाशकारी जलधर उठने लगे, वज्रपात होने लगा, आँधियाँ चलने लगीं । दिशाओं में आग लग गई । घना अंधकार छा गया । पुथ्वी फटने लगी । इतनी घनघोर वर्षा हुई कि संपूर्ण धरती जलमग्न हो गई । इम सर्ग में कवि ने देवों की विकास क्रीडाओं के साथ साथ प्रकृति के भयंकर रूप के जो चित्र अंकित किए हैं, वे अत्यंत सजीव तथा मार्मिक हैं ।

"मनन करते करते मनु चिंता के कारण दुःखी हो जाते हैं । अतः वे कहते हैं - हे विस्मृति ! तुम मेरे समीप आओ, जिससे मैं अतीत की सभी घटनाओ को भूल जाऊँ । अरे अवसाद ! तुम मुझे आकर जारों ओर से घेर लो, जिससे मैं शिथिल हो जाऊँ और अतीत को चिंता न कर सकूँ ।" इन पंक्तियों में कवि ने चिंता से व्यथित मनुष्य का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । विचारपूर्वक देखा जाय तो इस छंद में कामायनी की कथावस्तु का बीज विद्यमान है । शास्त्रीय दृष्टि से यहाँ बीज नामक अर्थ प्रकृति विद्यमान है ।

मनु अपनी देव जाती की अहमन्यता पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहते हैं कि आज मैं देवताओं के उस थोथे एवं मिथ्या अभिमान के रूप में जीवित हूँ जो अत्यंत भयानक था और जिसके परिणाम स्वरूप देवजाति अमरता की तुच्छ भावना में लीन होकर नष्ट हो गई । हाय ! आज मैं नई सृष्टि के विकास से पूर्व एक तुच्छ व्यक्ति की तरह संसार में सबसे पहले उत्पन्न होनेवाली देव जाति के विनाश की उसी तरह सूचना दे रहा हूँ, जिस तरह नाटकों में किसी अंक के आरंभ होने से पहले विष्कंभक के अंतर्गत कोई अधम पात्र कुछ बीती हुई बातों को दर्शकों या पाठकों की जानकारी के लिए सुनाया करता है ।

कवि ने मनु के मुख से अमरता की भावना को मिथ्या कहा है । मनु देवों की अमरता की भावना को घृणा की दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि अरी देवों का सर्वनाश करनेवाली अमरता की प्राचीन भावना । तेरे ही कारण देवों का जीवन मृग तृष्ण के तुल्य हो गया या, जिससे वे तृषित होकर विषयों में उसी तरह अधिकाधिक प्रवृत्त होते थे, जिस तरह प्यासा हरिण मरु स्थल में सूर्य की किरणों से उत्पन्न मिथ्या जल के पीछे पागल होकर दौड़ता रहता है । यहाँ कवि ने अमरता

को मरु मरीचिका, अलस, विषाद, जर्जर अवसाद आदि कहा है । ये विशेषण सार्थक और साभिप्राय है ।

इसके बाद कवि ने मृत्यु की सत्यता आदि के बारे में भी मनु के मुँह से अपने विचार प्रकट किए हैं ।

मनु अमरता के विपरीत मृत्युको सत्य बताते हुए कहते हैं - "अरी मृत्यु तू दीर्घकाल तक सुलनेवाली नींद है और तेरी गोद बर्फ के ढेरे के समान अत्यंत शीतलता एवं चिरशांति देनेवाली है । तू प्रत्येक युग में अखिल विश्व के अंतर्गत पदार्थों का क्रम क्रम से विनाश करती हुई, ऐसी हलचल पैदा करती रहती है, जैसी कि समुद्र में लहरों के कारण होती है । यहाँ पर कवि ने संसार के पदार्थो की उत्पत्ती और विनाश का सम्बन्ध समुद्र की लहरों से जोड़ा है । और यह सिद्ध किया है कि किसी को अमर कहना ठीक नहीं है । इस प्रकार आगे के छंदों में मृत्यु का यथार्थ चित्रण किया गया है ।

भारत प्राकृतिक सौंन्दर्य का अक्षय भंडार है । यहाँ के कवियों ने उसके रम्य रूप और रुद्र रूप दोनों का चित्रण किया है । चिंता सर्ग का प्रलय वर्णन प्रकृति के भयानक रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें प्राकृतिक शक्तियों के आकुंचन, विकुंचन, प्राकृतिक पदार्थो के आलोडन-विलोडन, भयंकर मेघों के गर्जन-तर्जन, करका-क्रन्दन पंचभूतों के भैरव मिश्रण जलधि, लहरियों के आरोहण-अवरोहण का, ऐसा चित्रशक्ति किया गया है, जिसमें भयानक रुपों के दर्शन के साथ साथ हृदय को कंपादेनेवाली ध्वनियों को भी, स्पष्ट सुना जा सकता है । सुनिए कवियों के शब्दों में हो -

हाहाकार हुआ क्रन्दनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर ।
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव
बार बार होता था क्रूर ।
दिग्दाहों से घूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के !
सघन गगन में भीम प्रकंपन,
झंझा के चलते झटके ।

काव्यों में प्रकृति का प्रयोग लोकशिक्षा के रूप में भी होता है । इस प्रणाली के द्वारा कवि जन प्रकृति के ऐसे ऐसे रहस्य पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । 'कामायनी' में प्रसाद जी ने कही कही इस प्रणाली को भी अपनाया है जैसे - चिंता सर्ग में वे लिखते हैं, जिस तरह मेघों के मध्य विद्युत प्रकाश क्षणिक होता है, वैसे ही यह मानव जीवन भी क्षणभंगुर है -

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घन माला में,
सौदामिनी संधि सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला में ।

कामायनी में भावों का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है । कहीं कहीं तो कवि भाव वर्णन में लीन हो गया हैं । तथा भावों को स्थायित्व प्रदान करके रस की कोटि में पहुँचाया हैं । अतः कामायनी में अधिकांश रसों के पूर्ण-परि-पाक के भी दर्शन होते हैं ।

कामायनी के प्रारम्भिक चिंता सर्ग में कवि ने अपनी उर्वर कल्पना एवं प्रशस्त लेखनी द्वारा करुणा की नदी को, अविरल गति से प्रवाहित किया है । अपने प्रियजनों का व्यापक विनाश देखकर मनु को जो शोक उत्पन्न हुआ है, वहाँ करुण रस की अभिव्यक्ति हुई हैं ।

जैसे -

प्रकृति रही दुर्जेय पराजित
हम सब थे भूले मद में ;
भोले थे, हाँ तिरते केवल
सब विलासिता के नद में ।
वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव बन गया पारावार ;
उमड़ राह है देव सुखों पर
दुख जलधि का नाद अपार ।

यहाँ पर देवों का विनाश आलंबन है । उनके वैभव विलासिता, प्रकृति को जीतने की शक्ति आदि का स्मरण उद्दीपन विभाव है । मनु का आहें भरना, चिंता करना आदि अनुभव है । चिंता ग्लानि, विषाद, स्मृति, दैन्य आदि संचारी भाव हैं और स्थायी भाव शोक है, जिससे करुणा रस की पुष्टि हुई है ।

चिन्ता सर्ग के कुछ अन्य स्थानों पर भयानक रस की भी अभिव्यक्ति हुई है ।

प्रसाद जी ने कामायनी में भावसौन्दर्य के स्त्रजीव चित्र अंकित करके अपनी चित्रण-कुशलता का परिचय दिया है । उदाहरण के लिए चिन्ता सर्ग में चिंन्ता नामक मनोभाव का ही चित्र देखिए । इसमें चिन्ता को विश्व वन की सर्पिणी ज्वालामुखी पर्वत के भीषण स्फोट के प्रथम कंपन के समान मतवाली, अभाव की चपल बालिका ललाट की खल रेखा, हरी भरी सी दौड़-धूप समस्त ग्रहों की हलचल आदि कहकर उसे हृदय की लहलहाती हुई खेती के ऊपर ओलों से भरे हुए बादलों के तुल्य छायी रहनेवाली बतलाया है । यहाँ चिन्ता की अंतर्बाह्य समस्त विशेषताओं के साथ उनके मूलरूप को भी सजीवता के साथ अंकित करने का प्रयत्न किया गया है ।

कामायनी में सर्वत्र जीव और ब्रह्म तथा ब्रह्म और जगत की अभेदता का समर्थन कीया गया है । सर्वत्र एक चिति या चेतन का ही प्राधान्य है । चड़ और चेतन का भेद व्यर्थ है । वह चिति ही कहीं जड़ और कहीं चेतन रूप में दिखाई देती । चिन्ता सर्ग में इस अभेदवाद का निरूपण किया गया है । उदाहरण के लिए :

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन ;
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड या चेतन !

'चिन्ता' सर्ग में देव संस्कृति का निरूपण भी किया गया है । यहाँ देवों की अलौकिक शक्ति संपन्नता का विशद उल्लेख मिलता है । यहाँ यह लिखा है कि देवताओं ने विश्व भर के अपार बल वैभव एक आनन्द को अपने अधिकार में कर लिया था । सर्वत्र उद्वेलित लहरों के समान इनकी समृद्धि का सुख-संचार

होता था । सूर्य की किरणों के समान इनकी कीर्ति दीप्ति और शोभा चारों ओर नृत्य करती थी । देवों की शक्ति इतनी अपरिमित थी कि प्रकृति उनके पद तक में झुकी रहती थी । इस प्रकार चिन्ता सर्ग में देवों के अनन्त ऐश्वर्य, भव्य और विशाल भवनों में निवास, संगीत प्रियता, अलंकार प्रियता, सोम एक सुरपान, यज्ञों में आस्था विलास प्रियता आत्मवाद की प्रबलता, समरता की भावना आदि बातों का उल्लेख हैं । उनकी भोग प्रधान संकृति का निरुपण करते हुए दिखाया है कि विलासिता और अहं के कारण यह सुर संस्कृति नष्ट हो गई ।

17.4 मनु का चरित्र चित्रण

'कामायनी' की कथा के केन्द्र बिन्दु मनु हैं । ये ही कथानायक हैं । सारी कथा इनके चारों ओर मकडी के जाल की भाँति फैली हुई हैं । इनका पूरा नाम वैवस्वत मनु हैं । अध्ययन की सुविधा के लिए मनु के चरित्र को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं ।

17.4.1 देवता मनु

मनु देवपुरुष है । उच्छकुलोद्भव हैं । वे एक दीर्घकाय स्वस्थ व्यक्ति है । कवि ने प्रथम सर्ग में ही उनके व्यक्तित्व का गंभीर चित्रण किया है । हिमालय की ऊँची चोटी पर शिला का शीतल छाया में बैठकर मनु जलप्लावन के उतरने का दृश्य देख रहे हैं । साथ ही साथ देवों की विलास भावना, मिथ्या गर्व और अहं का स्मरण कर व्यथित हो रहे हैं । उनके मन में चिंता का उदय हो चुका है। फिर भी वे तरुण तपस्वी के समान दिखाई पड़ते हैं ।

तरुण तपस्वी सा वह बैठा
साधन करता सुर-श्मशान
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का
होता था सकरुण अवसान ।

उनके शरीर की दृढ गठन और सबलता का परिचय देने के लिए उतनी दृढ मासंपेशियों और स्वस्थ शिराओं की चर्चा की गई हैं -

अवयव की दृढ मांसपेशियाँ,
ऊर्जस्वित था विर्य्य अपार ;
स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार ।

अपार पौरुष एवं यौवन से प्रदीप्त मनु का मुख चिंताकातर बना हुआ है ।

चिंता कातर वदन हो रहा,
पौरुष जिसमें ओत प्रोत ;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्त्रोत ।

देवता के रूप में मनु केवल अपनी जाती के विनाश का चिंतन करते हुए दिखाई देतें हैं ।

17.4.2 ऋषि मनु

कामायनी में देवता मनु के बाद ऋषि मनु के स्वरूप का दर्शन होता है जब मनु को अपनी जातिगत भूल प्रतीत होती हैं । और देवताओं के विनाश के कारण मालूम होते हैं, तब उन्हें उस विराट शक्ति पर विश्वास होने लगता है । और सोचते हैं कि कोई विराट सत्ता अवश्य है, जिसका शासन सभी प्राकृत्रिक शक्तियाँ मानती हैं । अतः वैदिक ऋषियों की भाँति उस अज्ञात शक्ति के प्रति यो कहते हैं -

हे अनंत रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता ।
हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान ।

उस अज्ञात शक्ति पर विश्वास हो होते मनु ऋषियों की तरह अग्निहोत्र, पाकयज्ञ आदि में लीन हो जाते हैं और एक तपस्वी का सा जीवन बिताने लगते

हैं । जब मनु के मन में जीने की इच्छा उत्पन्न होती है, तब वे एक स्थान पर कुटी बनाकर रहने लगते हैं । यज्ञ भी करते हैं । यहीं से कर्मकाण्डी तपस्वी मनु का व्यक्तित्व आरम्भ होता हैं । वे नियमित रूप से यज्ञ का अवशिष्ट अन्न कहीं दूर रखकर आ जाते हैं । उन्हें यह सोचकर प्रसन्नता होती है कि उनकी तरह कोई और व्यक्ति भी प्रलय से शायद बच गया हो -

अग्निहोत्रं अवशिष्ट अन्न कुछ,
कहीं दूर रख आते थे ;
होगा इससे तृप्त अपरिचित
समझ सहज सुख पाते थे ।

इस तरह तपस्या और यज्ञ करते करते अनेक दिन बीत जाते हैं । एक रात को अचानक उनका मन व्यथित हो उठता है । हृदय में अनादि वासना जाग्रत हो जाती है । इससे वे बेचैन हो जाते हैं । अब देवता और ऋषि रूप को छोड़कर मनु एक साधारण व्यक्ति बन जाते हैं । जब वे साधारण व्यक्ति बन जाते हैं, तब वासना से अभिभूत हो जाते है । वासना के उदय होते ही मनु को जीवन संगिनि की चाह होती है । हृदय में अत्यंत संघर्ष चलता है । अब मनु का व्यक्तित्व तपस्वी से प्रेमी के रूप में उभरता है । एक दिन श्रद्धा से उनकी भेंट होती हैं । उसे देखते हीं मनु के हृदय में एक झटका सा लगता है । श्रद्धा के मिलन से मनु जीवन के अस्तित्व का सही अर्थ समझते हैं । श्रद्धा के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मनु मंत्र-विमुग्ध हो जाते हैं । जब मनु से श्रद्धा उसका परिचय पूछती है, तब मनु अत्यन्त निराशा से सारी गाथा सुनाते है । उनकी दयनीय स्थिति को देखकर श्रद्धा मनु का सांसारिक जीवन को व्यतीत करने की प्रेरणा देती है । श्रद्धा को अपनी जीवन संगिनी बनाने के लिए मनु तत्पर होते हैं ।

17.4.3 मनु का गृहस्थ जीवन

श्रद्धा को पत्नी-रूप में मनु स्वीकार करते हैं । अब वे एक गृहस्थ बन जाते हैं । मनु को श्रद्धा आत्म समर्पण कर देती हैं -

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संस्कृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार ।

समर्पित श्रद्धा के प्रति आकर्षित मनु के मन में काम का संचार होता है । धीरे धीरे वासना का प्रभाव मनु पर होने लगता है । मनु के भोग वाद का इतना विकास होता है कि वे श्रद्धा पर एकाधिकार की भावना से शासन करने लगता हैं ।

मनु के चरित्र में वासना तथा इंद्रिय लोलुपता की मात्रा अत्यधिक रूप में मिलती है । सोमरस के निरंतर पान के कारण मनु श्रद्धा से इंद्रिय सुख प्राप्त करने के लिए कितने ऊर्जस्वित हो जाते हैं, इसका चित्रण कवि ने बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है । मनु के प्रेम में आदान की अपेक्षा, लेने की प्रवृत्ति अधिक हो जाती है । वे एक प्रकार से कामुक बन जाते हैं । इस सम्बन्ध में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का कथन यों हैं - "मनु के चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि यह अपने प्रेम को स्थायित्व नहीं दे पाता । क्षण भर में तुष्ट होनेवाला व्यक्ति न तो कभी हार्दिकता का परिचय दे सकता है, और न कभी वह अविचल रूप से प्रेम मार्ग में ही चला जाता है ।"मनु गृहस्थ बनने के बाद भी यज्ञादि में लगे रहते हैं । असुर पुरोहितों की प्रेरणा से पशु वध भी करते हैं । मांस, सुरा सोम आदि के खान-पान में लीन होकर कर्मकांड में लगजाते हैं । उन्हें नित्य मृगया, पशुवध, पशुयज्ञ और सुरापान में ही अधिक आनन्द आता है और श्रद्धा के विरोध करने पर भी हिंसात्मक कार्यों से विमुख नहीं होते । इतना ही नहीं वे एक साधारण व्यक्ति की भाँति अहंकार और ईर्ष्या आदि से भरे हुए जीवन को सुखकर मान बैठते हैं । भावी संतान की सुख सुविधा में लीन रहनेवाली श्रद्धा से उन्हें विकर्षण होने लगता है । अपने स्वत्व की मांग करते हुए वे कहते हैं -

यह जलन नहीं मैं सह सकता,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व ;
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्व ।

अपने भावी शिशु को अपने प्रेम में बाधक समझकर मनु गर्भवती श्रद्धा को छोड़कर चले जाते हैं । इस संबन्ध में डॉ. भागीरथ दीक्षित का कथन यों है-

"मनु में एकान्तिक अधिकार की निर्बाध विलास की भावना, उनकी प्रबल शक्ति को सूचित करती है । कितनी बाधाएँ आयी । कितनी आत्म ग्लानि हुई, और कितना संघर्ष उन्हें करना पडा, पर वे अपनी वासना को न रोक सके।"

17.4.4 प्रजापति मनु

श्रद्धा का परित्याग का मनु अनेक स्थानों में घूमते फिरे । पर शान्ति उन्हें कहीं नहीं मिली । एक दिन वे सारस्वत प्रदेश में जा निकले । सारस्वती नदी के किनारे बसा यह राज्य भूचाल से नष्ट-भ्रष्ट हो गया था । मनु थके हुए थे और एक स्थान पर लेटे लेटे सोचने लगे "जीवन क्या है ? जगत क्या है ? मनुष्य क्या है ? हमारे अस्तित्व का तात्पर्य उद्देश्य क्या है ? कुछ हो मैं जीवन का आदर्श जड़ हिमालय को नहीं बनाना चाहता । कर्मशील बनाना चाहता हूँ ।" फिर उन्हें श्रद्धा की याद आई । इसी समय आकाश में काम की वाणी उन्हें सुनाई दी तुम्हारे दुख का कारण यह है कि संसार को नश्वर समझकर तुमने उसे भोगना चाहा और भोग से बाहर सुख की कल्पना नहीं की । तुम स्वार्थी ही नहीं अंहकारी भी हो ।" काम की यह वाणी सुन मनु उदास हो जाते हैं । इतने में प्रभात होता है और एक अनिंदम सुन्दरी से उसकी भेंट होती है । उस सुन्दरी का नाम इड़ा था । वह मनु के पास आती है । दोनों का परिचय होता है । इड़ा अपने विचारों से मनु को अपनी ओर आकृष्ट करती है और उजडे हुए सारस्वत नगर के पुननिर्माण का कार्य सौंप-देती है । मनु भी बड़े परिश्रम करके नगर की सुन्दर व्वयस्था करते हैं । वैज्ञानिक ढंग से सभी क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त करते हैं और नगर सुख-समृद्धि से पूर्ण हो जाता है ।

मनु की अतृप्त वासना फिर जागृत होती है । वे इड़ा पर भी अपना अधिकार जमा कर अपनी वासना की पूर्ति करना चाहते हैं । जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि मनु के विरुद्ध जनता हलचल मचा देती है । भयंकर क्रान्ति होती है । मनु घायल होकर मुमूर्षु अवस्था को प्राप्त होते हैं।

यहाँ पर मनु एक ओर तो प्रजापति शासक, एवं पृथ्वीपति के रूप में चित्रित किए गए हैं और दूसरी ओर वे नियम प्रणेता स्मृतिकार के रूप में भी

दिखाई देते हैं इसके अतिरिक्त मनु एक वीर योद्धा भी है । आकुलि-किलात आदि जनता के नेताओं को अपने धनुष-बाण से मार गिराते हैं । अकेले ही जनता का सामना करते हैं और पराजित होते हैं।

प्रजापति के रूप में नवीन संस्कृति और सृष्टि के प्रवर्तक माने जाते हैं । लेकिन वे प्रजापति के रूप में अन्ततः सफल नहीं हो पाए ।

जनता से पराजित होकर जब मनु मूर्छित पड़े थे तब श्रद्धा आकर उसे सचेत करती है और उसे सहलाती है । श्रद्धा के कोमल स्पर्श से मनु की व्यथा दूर हो जाती है और आँखे भर आती हैं । दिन व्यतीत हुआ । रात आई । किसी के नींद न आई । मनु तो सबसे अधिक दुःखी थे । वे पड़े पड़े सोचने लगे - "मैं पापी हूँ। अपने इस मुख को श्रद्धा कों कैसे दिखलाऊँ ? यह सोचते सोचते सब को छोड़कर मनु वहाँ से निकल पड़े ।

बाद में श्रद्धा मनु की खोज करने निकल पड़ती है । सरस्वती नदी के किनारे चलते चलते एक ऐसे नीरव स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ एक शिला पर बैठे हुए मनु तपस्या में लीन दिखाई देते हैं । मनु को उस समय कैलास पर्वत पर भगवान शिव का नृत्य दिखाई पड़ता है । उस दृश्य को देखकर श्रद्धा से मनु कहता हैं कि "मुझे भगवान शिव के उस पवित्र-चरणों तक ले चलो जिससे मेरे समस्त पाप उनकी तीव्र ज्वाला में भस्म हो जाय जिससे मैं समरसता में लीन होकर अखण्ड आनंद को प्राप्त कर सकूँ ।"

17.4.5 आनंदवादी मनुः

कैलासवासी भगवान शिव के दर्शन हेतु मनु की उत्कट अभिलाषा देखकर श्रद्धा मनु के साथ कैलास पर्वत पर चढती है और मार्ग में मनु को त्रिपुर का रहस्य समझाती है । इस त्रिपुर में इच्छा, क्रिया और ज्ञान नामक तीन शक्तियों से सम्बन्धित भावलोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक है, जो पृथक पृथक रहने के कारण अपूर्ण है । तदनंतर श्रद्धा अपनी स्थिति से इन तीनों लोकों का समन्वय कर देती है, जिससे समस्त विश्व में मनु को दिव्य अनाहत नाद सुनाई पड़ता है और वे श्रद्धा सहित तन्मय होकर अखण्ड आनंद को प्राप्त होते हैं ।

समरसत जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था ;
चेतनता एक विलसती
आनंद अखण्ड घना था ।

17.5 मनु का सांकेतिक व्यक्तित्व

मनु मन के भी प्रतीक है । इसी रुपकत्व का निर्वाह करने के लिए प्रसाद ने सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का चित्रण किया है । अंत में सात्विकता को उन्नतावस्था में पहुँचाकर मानव मात्र के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित किया है कि मानव कितना ही पतित एवं निकृष्ट क्यों न हो जाय, वह श्रद्धा सहित इच्छा ज्ञान और क्रिया के समन्वित स्वरूप को अपनाता हुआ पुनः एक महा पुरुष बन सकता है । उसके जीवन में समरसता आ सकती है, वह संतुलित जीवन व्यतीत कर सकता है और अंत में परमानंद भी प्राप्त कर सकता है ।

मनु मन का प्रतीक है । सर्वप्रथम यह मन इधर उधर भटकता हुआ व्यथित और बेचैन है ।

चिंता कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओतप्रोत ;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्त्रोत ।

ऐसी स्थिति में उसे न तो जीवन यापन के साधन ही कुछ ज्ञात है और न यह इतनी सामर्थर्य ही रखता है कि स्वयं अपना मार्ग निश्चित कर सके यह अन्न से उत्पन्न और अन्नमय कोश में पडे हुए प्राणी की भाँति केवल अन्न को ही प्रमुख मानता हुआ पाकयज्ञ, आदि में लीन रहता है । चिंतन, मनन आदि अपने स्वाभाविक व्यापारों में संलग्न होकर अहं भावना से ओतप्रोत हो जाता है । इसी क्षण उसका (मनु) परिचय हृदय (श्रद्धा) से होता है । यह हृदय तत्व उसे मर्मण्यता का पाठ पढाता हुआ सांसारिक उन्नति के लिए प्रेरणा प्रधान करता है । किन्तु इतने में ही कोमलता आदि भोगों के प्रभाव से उसे आसुरी प्रकृतियों आकर दबा लेती हैं । और मन पापमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो जाता हैं ।

जिसके परिणाम स्वरूप वह अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का विरोध करता हुआ हिंसायुक्त वासना प्रधान जीवन को महत्व देने लगता है । अतः मन का सम्बन्ध हृदय से नहीं रहता और वह हृदय-शक्ति के क्षेत्र से दूर भाग कर जीव की दूसरी शक्ति बुद्धि के क्षेत्र में पदार्पण करता है ।

जब मन बुद्धि को अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाकर उस पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, तब बुद्धि शक्ति इस बात को स्वीकार नहीं करती। अतः दोनों में संघर्ष उठ खड़ा होता है । जिससे समस्त इन्द्रियों में हलचल मच जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि चेतना शून्य हो जाता है । अब उसका विश्वास तर्कशील बुद्धि पर से 30 जाता है और पुनः हृदय की शरण में आता है । यहाँ आते ही अब मन को इस पार्थिव जगत से वैराग्य होने लगता है और वह मनोमय कोश में पहुँच जाता है । यहाँ से हृदय की चेतन शक्ति उसे ऊँचा उठाती है जिससे मन को इच्छा, ज्ञान और क्रिया के त्रिकोण या त्रिपुर की वास्तविकताओं का ज्ञान होता है जिससे इच्छा ज्ञान और क्रिया का समन्वय हो जाता है और मन विज्ञानमय कोश में पहुँच जाता है । यहाँ आते ही उसकी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ नष्ट हो जाती है और उसे नानात्व में एकत्व की प्रतीति होने लगती है । यही उन्नतावस्था कैलासगिरि या आनन्दमय कोश है, जहाँ उसे सर्वत्र समरता के दर्शन होते हैं । उसकी अन्य इन्द्रियाँ भी उसका अनुसरण करने लगती हैं और वे सब श्रद्धा या हृदय के शासन में आ जाती है। कहीं भी भेद-भाव नहीं रहता । धार्मिक संकीर्णता भी जाती रहती है । क्योंकि धर्मप्रतिनिधि वृषभ को यही उत्सर्ग किया जाता है और विश्व बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर यह मन सर्वत्र जड़-चेतन में एक चेतनता को व्याप्ति देखता है तथा अखण्ड आनन्द में मग्न हो जाता हैं ।

17.6 निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रसाद जी ने मनु के व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का सुन्दर चित्रण किया है । साथ ही ऐतिहासिक पुरुष मनु का चरित्र तथा मन के सांकेतिक रूप दोनों का एक साथ अत्यन्त कौशल से प्रस्तुत किया हैं । स्वयं प्रसाद जी ने लिखा है कि यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रुपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है । इसलिए मनु, श्रद्धा और डड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति

करे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । मनु के चरित्र के संबंध में डॉ. फतहसिंह का कथन उल्लेखनीय है ।

"मनु का पहला प्रजापति रूप है, जो कामायनी में भी मनु-इड़ा-युग में मिलता है । दूसरा बौद्धिक कर्मकाण्डी ऋषि रूप है, जो यहाँ जलप्लावन में श्रद्धा-त्याग तक माना जा सकता है । परन्तु प्रजापति तथा ऋषि के अतिरिक्त कामायनी के मनु का तीसरा रूप भी है, जो मनु-इडा-युग के अंत होने पर आनंद पथ को खोजते हुए मनु में देखा जा सकता है । वास्तव में मनु के चरित्र निर्माण के लिए प्रसाद ने इतिहास से कुछ रेखाएँ ही ग्रहण की है । कहीं कहीं उन्होंने मनु के चरित्र में परिवर्तन भी कर दिया है ।"

17.7 बोध प्रश्न

1 कामायनी के चिंता सर्ग की कथा वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत कीजिए।

2 मनु का चरित्र चित्रण कीजिए।

17.8 नमूने का उत्तर

1 मनु का चारित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर - 'कामायनी' की कथा के केन्द्र बिन्दु मनु हैं । ये ही कथानायक हैं । सारी कथा इनके चारों ओर मकडी के जाल की भाँति फैली हुई हैं । इनका पूरा नाम वैवस्वत मनु हैं । अध्ययन की सुविधा के लिए मनु के चरित्र को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं ।

देवता मनु :

मनु देवपुरुष है । उच्छकुलोद्भव हैं । वे एक दीर्घकाय स्वस्थ व्यक्ति है । कवि ने प्रथम सर्ग में ही उनके व्यक्तित्व का गंभीर चित्रण किया है । हिमालय की ऊँची चोटी पर शिला का शीतल छाया में बैठकर मनु जलप्लावन के उतरने का दृश्य देख रहे हैं । साथ ही साथ देवों की विलास भावना, मिथ्या गर्व और अहं का स्मरण कर व्यथित हो रहे हैं । उनके मन में चिंता का उदय हो चुका है। फिर भी वे तरुण तपस्वी के समान दिखाई पड़ते हैं ।

तरुण तपस्वी सा वह बैठा
साधन करता सुर-श्मशान
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का
होता था सकरुण अवसान ।

उनके शरीर की दृढ गठन और सबलता का परिचय देने के लिए उतनी दृढ मासंपेशियों और स्वस्थ शिराओं की चर्चा की गई हैं -

अवयव की दृढ मांसपेशियाँ,
ऊर्जस्वित था विर्य्य अपार ;
स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार ।

अपार पौरुष एवं यौवन से प्रदीप्त मनु का मुख चिंताकातर बना हुआ है ।

चिंता कातर वदन हो रहा,
पौरुष जिसमें ओत प्रोत ;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्त्रोत ।

देवता के रूप में मनु केवल अपनी जाती के विनाश का चिंतन करते हुए दिखाई देतें हैं ।

ऋषि मनु :

कामायनी में देवता मनु के लाद ऋषि मनु के स्वरूप का दर्शन होता है जब मनु को अपनी जातिगत भूल प्रतीत होती हैं । और देवताओं के विनाश के कारण मालूम होते हैं, तब उन्हें उस विराट शक्ति पर विश्वास होने लगता है । और सोचते हैं कि कोई विराट सत्ता अवश्य है, जिसका शासन सभी प्राकृत्रिक शक्तियाँ मानती हैं । अतः वैदिक ऋषियों की भाँति उस अज्ञात शक्ति के प्रति यो कहते हैं -

हे अनंत रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता

कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता ।
हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान ।

उस अज्ञात शक्ति पर विश्वास हो होते मनु ऋषियों की तरह अग्निहोत्र, पाकयज्ञ आदि में लीन हो जाते हैं और एक तपस्वी का सा जीवन बिताने लगते हैं । जब मनु के मन में जीने की इच्छा उत्पन्न होती है, तब वे एक स्थान पर कुटी बनाकर रहने लगते हैं । यज्ञ भी करते हैं । यहीं से कर्मकाण्डी तपस्वी मनु का व्यक्तित्व आरम्भ होता हैं । वे नियमित रूप से यज्ञ का अवशिष्ट अन्न कहीं दूर रखकर आ जाते हैं । उन्हें यह सोचकर प्रसन्नता होती है कि उनकी तरह कोई और व्यक्ति भी प्रलय से शायद बच गया हो -

अग्निहोत्रं अवशिष्ट अन्न कुछ,
कहीं दूर रख आते थे ;
होगा इससे तृप्त अपरिचित
समझ सहज सुख पाते थे ।

इस तरह तपस्या और यज्ञ करते करते अनेक दिन बीत जाते हैं । एक रात को अचानक उनका मन व्यथित हो उठता है । हृदय में अनादि वासना जाग्रत हो जाती है । इससे वे बेचैन हो जाते हैं । अब देवता और ऋषि रूप को छोड़कर मनु एक साधारण व्यक्ति बन जाते हैं । जब वे साधारण व्यक्ति बन जाते हैं, तब वासना से अभिभूत हो जाते है । वासना के उदय होते ही मनु को जीवन संगिनि की चाह होती है । हृदय में अत्यंत संघर्ष चलता है । अब मनु का व्यक्तित्व तपस्वी से प्रेमी के रूप में उभरता है । एक दिन श्रद्धा से उनकी भेंट होती हैं । उसे देखते हीं मनु के हृदय में एक झटका सा लगता है । श्रद्धा के मिलन से मनु जीवन के अस्तित्व का सही अर्थ समझते हैं । श्रद्धा के अलौकिक सौंन्दर्य को देखकर मनु मंत्र-विमुग्ध हो जाते हैं । जब मनु से श्रद्धा उसका परिचय पूछती है, तब मनु अत्यन्त निराशा से सारी गाथा सुनाते है । उनकी दयनीय स्थिति को देखकर श्रद्धा मनु का सांसारिक जीवन को व्यतीत करने की प्रेरणा देती है । श्रद्धा को अपनी जीवन संगिनी बनाने के लिए मनु तत्पर होते हैं ।

मनु का गृहस्थ जीवन :

श्रद्धा को पत्नी-रूप में मनु स्वीकार करते हैं । अब वे एक गृहस्थ बन जाते हैं । मनु को श्रद्धा आत्म समर्पण कर देती हैं -

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संस्कृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार ।

समर्पित श्रद्धा के प्रति आकर्षित मनु के मन में काम का संचार होता है । धीरे धीरे वासना का प्रभाव मनु पर होने लगता है । मनु के भोग वाद का इतना विकास होता है कि वे श्रद्धा पर एकाधिकार की भावना से शासन करने लगता हैं ।

मनु के चरित्र में वासना तथा इंद्रिय लोलुपता की मात्रा अत्यधिक रूप में मिलती है । सोमरस के निरंतर पान के कारण मनु श्रद्धा से इंद्रिय सुख प्राप्त करने के लिए कितने ऊर्जस्वित हो जाते हैं, इसका चित्रण कवि ने बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है । मनु के प्रेम में आदान की अपेक्षा, लेने की प्रवृत्ति अधिक हो जाती है । वे एक प्रकार से कामुक बन जाते हैं । इस सम्बन्ध में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का कथन यों हैं - "मनु के चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि यह अपने प्रेम को स्थायित्व नहीं दे पाता । क्षण भर में तुष्ट होनेवाला व्यक्ति न तो कभी हार्दिकता का परिचय दे सकता है, और न कभी वह अबिचल रूप से प्रेम मार्ग में ही चला जाता है ।"मनु गृहस्थ बनने के बाद भी यज्ञादि में लगे रहते हैं । असुर पुरोहितों की प्रेरणा से पशु वध भी करते हैं । मांस, सुरा सोम आदि के खान-पान में लीन होकर कर्मकांड में लगजाते हैं । उन्हें नित्य मृगया, पशुवध, पशुयज्ञ और सुरापान में ही अधिक आनन्द आता है और श्रद्धा के विरोध करने पर भी हिंसात्मक कार्यों से विमुख नहीं होते । इतना ही नहीं वे एक साधारण व्यक्ति की भाँति अहंकार और ईर्ष्या आदि से भरे हुए जीवन को सुखकर मान बैठते हैं । भावी संतान की सुख सुविधा में लीन रहनेवाली श्रद्धा से उन्हें विकर्षण होने लगता है । अपने स्वत्व की मांग करते हुए वे कहते हैं -

यह जलन नहीं मैं सह सकता,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व ;
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्व ।

अपने भावी शिशु को अपने प्रेम में बाधक समझकर मनु गर्भवती श्रद्धा को छोड़कर चले जाते हैं । इस संबन्ध में डॉ. भागीरथ दीक्षित का कथन यों है-

"मनु में एकान्तिक अधिकार की निर्बाध विलास की भावना, उनकी प्रबल शक्ति को सूचित करती है । कितनी बाधाएँ आयी । कितनी आत्म ग्लानि हुई, और कितना संघर्ष उन्हें करना पडा, पंर वे अपनी वासना को न रोक सके।"

प्रजापति मनु -

श्रद्धा का परित्याग का मनु अनेक स्थानों में घूमते फिरे । पर शान्ति उन्हें कहीं नहीं मिली । एक दिन वे सारस्वत प्रदेश में जा निकले । सारस्वती नदी के किनारे बसा यह राज्य भूचाल से नष्ट-भ्रष्ट हो गया था । मनु थके हुए थे और एक स्थान पर लेटे लेटे सोचने लगे "जीवन क्या है ? जगत क्या है ? मनुष्य क्या है ? हमारे अस्तित्व का तात्पर्य उद्देश्य क्या है ? कुछ हो मैं जीवन का आदर्श जड़ हिमालय को नहीं बनाना चाहता । कर्मशील बनाना चाहता हूँ ।" फिर उन्हें श्रद्धा की याद आई । इसी समय आकाश में काम की वाणी उन्हें सुनाई दी तुम्हारे दुख का कारण यह है कि संसार को नश्वर समझकर तुमने उसे भोगना चाहा और भोग से बाहर सुख की कल्पना नहीं की । तुम स्वार्थी ही नहीं अंहकारी भी हो ।" काम की यह वाणी सुन मनु उदास हो जाते हैं । इतने में प्रभात होता है और एक अनिंदम सुन्दरी से उसकी भेंट होती है । उस सुन्दरी का नाम इड़ा था । वह मनु के पास आती है । दोनों का परिचय होता है । इड़ा अपने विचारों से मनु को अपनी ओर आकृष्ट करती है और उजडे हुए सारस्वत नगर के पुननिर्माण का कार्य सौंप-देती है । मनु भी बड़े परिश्रम करके नगर की सुन्दर व्वयस्था करते हैं । वैज्ञानिक ढंग से सभी क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त करते हैं और नगर सुख-समृद्धि से पूर्ण हो जाता है ।

मनु की अतृप्त वासना फिर जागृत होती है । वे इड़ा पर भी अपना अधिकार जमा कर अपनी वासना की पूर्ति करना चाहते हैं । जिसका दुष्परिणाम

यह होता है कि मनु के विरुद्ध जनता हलचल मचा देती है । भयंकर क्रान्ति होती है । मनु घायल होकर मुमूर्षु अवस्था को प्राप्त होते हैं।

यहाँ पर मनु एक ओर तो प्रजापति शासक, एवं पृथ्वीपति के रूप में चित्रित किए गए हैं और दूसरी ओर वे नियम प्रणेता स्मृतिकार के रूप में भी दिखाई देते हैं इसके अतिरिक्त मनु एक वीर योद्धा भी है । आकुलि-किलात आदि जनता के नेताओं को अपने धनुष-बाण से मार गिराते हैं । अकेले ही जनता का सामना करते हैं और पराजित होते हैं।

प्रजापति के रूप में नवीन संस्कृति और सृष्टि के प्रवर्तक माने जाते हैं । लेकिन वे प्रजापति के रूप में अन्ततः सफल नहीं हो पाए ।

जनता से पराजित होकर जब मनु मूर्छित पड़े थे तब श्रद्धा आकर उसे सचेत करती है और उसे सहलाती है । श्रद्धा के कोमल स्पर्श से मनु की व्यथा दूर हो जाती है और आँखे भर आती हैं । दिन व्यतीत हुआ । रात आई । किसी के नींद न आई । मनु तो सबसे अधिक दुःखी थे । वे पड़े पड़े सोचने लगे - "मैं पापी हूँ। अपने इस मुख को श्रद्धा कों कैसे दिखलाऊँ ? यह सोचते सोचते सब को छोड़कर मनु वहाँ से निकल पड़े ।

बाद में श्रद्धा मनु की खोज करने निकल पड़ती है । सरस्वती नदी के किनारे चलते चलते एक ऐसे नीरव स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ एक शिला पर बैठे हुए मनु तपस्या में लीन दिखाई देते हैं । मनु को उस समय कैलास पर्वत पर भगवान शिव का नृत्य दिखाई पड़ता है । उस दृश्य को देखकर श्रद्धा से मनु कहता हैं कि "मुझे भगवान शिव के उस पवित्र-चरणों तक ले चलो जिससे मेरे समस्त पाप उनकी तीव्र ज्वाला में भस्म हो जाय जिससे मैं समरसता में लीन होकर अखण्ड आनंद को प्राप्त कर सकूँ ।"

आनंदवादी मनुः

कैलासवासी भगवान शिव के दर्शन हेतु मनु की उत्कट अभिलाषा देखकर श्रद्धा मनु के साथ कैलास पर्वत पर चढती है और मार्ग में मनु को त्रिपुर का रहस्य समझाती है । इस त्रिपुर में इच्छा, क्रिया और ज्ञान नामक तीन शक्तियों से सम्बन्धित भावलोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक है, जो पृथक पृथक रहने के कारण अपूर्ण है । तदनंतर श्रद्धा अपनी स्थिति से इन तीनों लोकों का

समन्वय कर देती है, जिससे समस्त विश्व में मनु को दिव्य अनाहत नाद सुनाई पड़ता है और वे श्रद्धा सहित तन्मय होकर अखण्ड आनंद को प्राप्त होते हैं ।

समरसत जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था ;
चेतनता एक विलसती
आनंद अखण्ड घना था ।

मनु का सांकेतिक व्यक्तित्व :

मनु मन के भी प्रतीक है । इसी रुपकत्व का निर्वाह करने के लिए प्रसाद ने सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का चित्रण किया है । अंत में सात्विकता को उन्नतावस्था में पहुँचाकर मानव मात्र के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित किया है कि मानव कितना ही पतित एवं निकृष्ट क्यों न हो जाय, वह श्रद्धा सहित इच्छा ज्ञान और क्रिया के समन्वित स्वरूप को अपनाता हुआ पुनः एक महा पुरुष बन सकता है । उसके जीवन में समरसता आ सकती है, वह संतुलित जीवन व्यतीत कर सकता है और अंत में परमानंद भी प्राप्त कर सकता है ।

मनु मन का प्रतीक है । सर्वप्रथम यह मन इधर उधर भटकता हुआ व्यथित और बेचैन है ।

चिंता कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओतप्रोत ;
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्त्रोत ।

ऐसी स्थिति में उसे न तो जीवन यापन के साधन ही कुछ ज्ञात है और न यह इतनी सामर्थर्य ही रखता है कि स्वयं अपना मार्ग निश्चित कर सके यह अन्न से उत्पन्न और अन्नमय कोश में पडे हुए प्राणी की भाँति केवल अन्न को ही प्रमुख मानता हुआ पाकयज्ञ, आदि में लीन रहता है । चिंतन, मनन आदि अपने स्वाभाविक व्यापारों में संलग्न होकर अहं भावना से ओतप्रोत हो जाता है । इसी क्षण उसका (मनु) परिचय हृदय (श्रद्धा) से होता है । यह हृदय तत्व उसे मर्मण्यता का पाठ पढाता हुआ सांसारिक उन्नति के लिए प्रेरणा प्रधान करता है । किन्तु

इतने में ही कोमलता आदि भोगों के प्रभाव से उसे आसुरी प्रकृतियों आकर दबा लेती हैं । और मन पापमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो जाता हैं । जिसके परिणाम स्वरूप वह अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का विरोध करता हुआ हिंसायुक्त वासना प्रधान जीवन को महत्व देने लगता है । अतः मन का सम्बन्ध हृदय से नहीं रहता और वह हृदय-शक्ति के क्षेत्र से दूर भाग कर जीव की दूसरी शक्ति बुद्धि के क्षेत्र में पदार्पण करता है ।

जब मन बुद्धि को अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाकर उस पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, तब बुद्धि शक्ति इस बात को स्वीकार नहीं करती। अतः दोनों में संघर्ष उठ खड़ा होता है । जिससे समस्त इन्द्रियों में हलचल मच जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि चेतना शून्य हो जाता है । अब उसका विश्वास तर्कशील बुद्धि पर से जाता है और पुनः हृदय की शरण में आता है । यहाँ आते ही अब मन को इस पार्थिव जगत से वैराग्य होने लगता है और वह मनोमय कोश में पहुँच जाता है । यहाँ से हृदय की चेतन शक्ति उसे ऊँचा उठाती है जिससे मन को इच्छा, ज्ञान और क्रिया के त्रिकोण या त्रिपुर की वास्तविकताओं का ज्ञान होता है जिससे इच्छा ज्ञान और क्रिया का समन्वय हो जाता है और मन विज्ञानमय कोश में पहुँच जाता है । यहाँ आते ही उसकी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ नष्ट हो जाती है और उसे नानात्व में एकत्व की प्रतीति होने लगती है । यही उन्नतावस्था कैलासगिरि या आनन्दमय कोश है, जहाँ उसे सर्वत्र समरता के दर्शन होते हैं । उसकी अन्य इन्द्रियाँ भी उसका अनुसरण करने लगती हैं और वे सब श्रद्धा या हृदय के शासन में आ जाती है । कहीं भी भेद-भाव नहीं रहता । धार्मिक संकीर्णता भी जाती रहती है । क्योंकि धर्मप्रतिनिधि वृषभ को यही उत्सर्ग किया जाता है और विश्व बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर यह मन सर्वत्र जड़-चेतन में एक चेतनता को व्याप्ति देखता है तथा अखण्ड आनन्द में मग्न हो जाता है ।

17.9 सहायक पुस्तकें

1 जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी

2 साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा

3 कामायनी का समीक्षात्मक अध्ययन : प्रो पुरुषोत्तम लाल

NOTES

इकाई 18
श्रद्धा सर्ग और श्रद्धा का चरित्र चित्रण

इकाई की रूप रेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 श्रद्धा सर्ग की कथा

18.3 व्याख्या भाग

18.4 श्रद्धा का चरित्र - चित्रण

18.4.1 श्रद्धा का बाह्य सौंदर्य

18.4.2 श्रद्धा में नारी सुलभ गुण-दोष

18.4.3 नारी के विविध रूपों की प्रतिनिधि

18.4.4 श्रद्धा प्रेरक शक्ति

18.4.5 श्रद्धा में कर्तव्यनिष्ठा

18.4.6 श्रद्धा एक आदर्श भारतीय नारी

18.5 निष्कर्श

18.6 बोध प्रश्न

18.7 नमूने का उत्तर

18.8 सहायक पुस्तकें

18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में श्रद्धा सर्ग और श्रद्धा सर्ग का चरित्र - चित्रण संबंधी विषय का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप -

- श्रद्धा सर्ग की कथा वस्तु को समझ सकेंगे।
- श्रद्धा सर्ग की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा कर सकेंगे।
- श्रद्धा सर्ग के पदों की व्याख्या कर सकेंगे।
- श्रद्धा के नारी सुलभ गुण दोषों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- नारी के विविद रूपों में श्रद्धा का चरित्रांकन कर सकेंगे।
- श्रद्धा को आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

कामायनी में श्रद्धा सर्ग की अपनी अलग महत्ता है। सांकेतिक रूप से देखा जाय तो मनु मन का प्रतीक है। श्रद्धा हृदय की प्रतीक है और ईडा बुद्धी की। श्रद्धा सर्ग में मनु श्रद्धा के प्रति आकर्षित हो जाता है और श्रद्धा अपनी प्रेम एवं हृदय से मनु को प्रभावित करति है। इस सर्ग में श्रद्धा का चरित्र चित्रण सुंदर ढंग से उभरा है।

18.2 श्रद्धा सर्ग की कथा

मनु एकान्त प्रदेश में अपने विचारों में लीन होकर बैठा है - अचानक, उसे किसी नारी-कण्ठ से निकला हुआ यह मधुर प्रश्न सुनाई दिया - "अरे ! संसार-समुद्र के इस तट पर तरंगों द्वारा फेंकी गयी मणि के समान तुम कौन हो ?" यह मधुर स्वर सुनकर मनु का हृदय एक मधुर रस से ओत प्रोत हो गया । उन्होंने देखा कि एक अति सुन्दर रमणी उनके सामने खड़ी है । मनु, उस युवती को देखते ही रह गए । मनु ने फिर उस युवती से यह उत्तर दिया कि 'मैं अत्यन्त दुःखी और निराश्रित व्यक्ति हूँ, क्योंकि मेरा सर्वस्व जलप्लवन के कारण मिट गया है । लेकिन तुम कौन हो ?"

मनु का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् श्रद्धा ने अपना परिचय दिया और कहा - मेरा वास्तविक निवास-स्थान गाँधार प्रदेश था । मुझ में ललित कलाएँ आदि सीखने का उत्साह था इसलिए मैं हमेशा इधर-उधर घूमा करती थी और मानस के सुन्दर सत्य को खोजना चाहती थी । इसीलिए घूमती फिरती इधर चली आयी और यहाँ की सुन्दरता देखकर यहीं रहने लगी । प्रलय के बाद मेरा जीवन अत्यन्त निरुपायस हो गया । एक वृक्ष के नीचे यज्ञ-बलि का अन्न देखकर अनुमान किया था कि प्रलय के बाद भी कोई व्यक्ति अभी इधर जीवित है ।

इस तरह श्रद्धा अपना परिचय देने के पश्चात व्यथित, थके, हताश से निराश होकर बैठे मनु को सांत्वना देते हुए कहती है - तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। क्योंकि सुख-दुःख संसार के अनिवार्य धर्म हैं । तुम अज्ञात दुःखों के भय से जटिलताओं का अनुमान कर, कामना (कर्म) से क्यों भाराना चाहते हो ? यह काम तो सर्व इच्छा का ही परिणाम है । तुम उसको तिरस्कार करके तम्हारे जीवन को असफल बनाते हो ! अब तुम्हें, काम की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और न दुःख से डरना चाहिए । इस संसार में सुख-दुख तो दिन-रात के सामन है ।

आगे श्रद्धा कहती हैं - कर्म का भोग और भोग का कर्म, यही तो सृष्टि का धर्म है तथा यही जड-चेतन का आनन्द है । तुम अत्यन्त निराशावादी हो ! इसी कारण तुम आत्मविस्तार में असमर्थ रहे हो और तुम्हें अपने ही बोझ में दबा हुआ देख सहयोग देना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ । मेरा हृदय तुम्हारे लिए उन्मुक्त है और दया, माया, ममता मृदुता तथा विश्वास के रत्न ग्रहण कर तुम सृष्टि के मूल रहस्य बन जाओं । तुम अमृत संतान हो, अतः तुम्हें डरना नहीं चाहिए । मन क चेतन राज को पूर्ण कर शक्ति के बिखरे विद्युत्कणों का समन्वय इस प्रकार करना चाहिए कि मानवता विजयिनी हो जाय ।"

इस प्रकार श्रद्धा ने मनु को उत्साहित करके कर्मशाली बनाया ।

18.3 व्याख्या भाग

"कौन तुम ? संसुति-जलनिधि तीर,
तरंगे से फेंकी मणि एक
कर रहे निर्जन का चुप-चाप
प्रभा की धारा से अभिषेक ?"

शब्दार्थ :

संसृति जलनिधि संसार रूपी भवसागर । तीर-किनारा, प्रभा की धारा-क्रांति की किरणें ।

व्याख्या :

एक दिन जब मनु चिंता में लीन होकर बैठे थे तब अचानक उन्हें ऐसा लगा कि कोई उनसे यह कह रहा - "तुम कौन हो? जिस प्रकार समुद्र की लहरें उथल-पुथल मचाकर मणि को तट पर फेंक देती हैं उसी प्रकार इस सांसारिक आघातों से ठुकराये हुए मणि के समान तुम कौन हो ? जिस प्रकार समुद्र की तट पर पड़ी हुई मणि अपनी आभा से समीपवर्ती प्रदेश को जगमगा देती है उसी प्रकार इस निर्जन प्रदेश की शून्यता को कांति की धारा से आलोकित करनेवाले तुम कौंन हो ?"

विशेषता :

भीषण जल-प्रलय में संसार का सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद मनु ही अकेला बचा हुआ था । संसार रूपी सागर की लहरों द्वारा फेंकी गई मणि के

समान वह जान पड़ता था । वह देवताओं की वंशज होने के कारण अपूर्व मणि के समान अपने अपूर्व व्यक्तित्व की आभा प्रकट करके बैंठा है ।

"तरंगों से फैंकी मणि" कहने में औचित्य है ।

अलंकार -

अलंकार रूपक एवं परिकर अलंकार है । लक्षणा शब्द शक्ति है । छन्द- संपूर्ण 'श्रद्धा' सर्ग में १६ मात्राओं का शृंगार छन्द प्रयुक्त हुआ है ।

"मधुर विश्रांत और एकांत-
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य ।"

शब्दार्थ - मधुर विश्रांत मधुरता से भरी हुई थकावट ; मौन-नीरवता ; करुणामय- करुणापूर्ण ।

व्याख्या :

उस आगंतुक व्यक्ति ने मनु से इस प्रकार पूछा - क्यों तुम एकांत स्थान में बहुत थके हुए और आलस्य से भरे हुए बैठे हो ? तुम इस तरह बैठे हो कि तुमने इस जगत का रहस्य-भली-भाँति जान लिया है । तुम्हारी मौनता न केवल तुम्हारे बाह्य सौंदर्य का बोध कराती है बल्कि स्पष्ट हो जाता है कि तुम्हारा हृदय करुणा से परिपूर्ण है । तुम्हारे हृदय में कोमल भावनाएँ हैं तथा लेश मात्र भी चंचलता नहीं है ।

विशेषता :

कामायनी के श्रद्धा सर्ग का आरंभ नाटकीय ही है । आगंतुक का परिचय कवि ने नहीं दिया है ; इसीके कारण पाठकों के मन में उत्सुकता जागती है । पर आगंतुक के कोमल भावनाओं से स्पष्ट होता है कि यह कोई नारी होगी । कवि यह भी स्पष्ट करना चाहता हैं कि कथा-नायक परिस्थितियों से आक्रांत होकर संवेदनशील हो चला है ।

अलंकार :

निरंग रूपक अलंकार तथा विशेषण-विपर्यय और विरोधाभास आदि अलंकारों की योजना भी हुई है ।

"सुना यह मनु ने मधु गुजार
मधुकरी का-सा जब सानन्द
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद ।"

शब्दार्थ :

मधु गुजार-मधुर स्वर, मधुकरी-भ्रमर, प्रथम कवि-आदि कवि वाल्मीकि ।

व्याख्या :

आगंतुक के कमल के समान कोमल मुख को झुकाए हुए भ्रमरी की मधुर गुजार की भाँति वाणी मनु ने प्रसन्न होकर सुनी । मनु का हृदय स्वभाविक ही आनदित हो उठा । वह वाणी अनायास वैसे ही निकल पड़ी थी जैसे एक दिन आदिकवि वाल्मीकि के मुख से कविता का प्रथम सुन्दर छन्द निकल पड़ा था ।

विशेषता :

कवि ने अभि तक अगंतुक का परिचय नहीं दिया है । फिर भी मुख को कमल मानकर उसकी वाणी भ्रमर की गुंजार जैसी मधुर कही गयी है । इससे पाठकों को यह अनुमान हो जाता है कि वह कोई सुन्दर मृदुभाषिणी लज्जाशील करुणामयी नारी है ।

अंतिम पंक्ति में प्रसाद जी ने "आदिकवि" वाल्मीकि की ओर संकेत किया है । वाल्मीकि की काव्य रचना के मूल में यह प्रसिद्धि है कि एक दिन महर्षि ने क्रौंच पक्षी के क्रीड़ाशील जोड़े में से एक को किसी व्याध ने अपने बाणों से आहत होकर पृथ्वी पर गिराते देखा । उस समय महर्षि वाल्मीकि के मन भर आया और करुणामयी वाणी से शोक ही यह श्लोक बनकर प्रकट हुआ -

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः
शाश्वती समः
यत्क्रौंच मिथुनादेकं अवधीः
काम मोहितम् ।।"

उपमा अलंकार का प्रयोग कविवर प्रसाद ने किया है ।

एक झिटका-सा लगा सहर्ष
निरखने लगे लुटे से, कौन-
गा रहा यह सुन्दर संगीत ?
कुतूहल रह न सका फिर मौन ।"

शब्दार्थ :

झिटका-सा लगा-बिजली सी दौड़ गई । लुटे से - आश्चर्य चकित ।

व्याख्या :

कवि का कहना है कि अगंतुक की मधुर-वाणी सुनते ही मनु के रोम-रोम में हर्ष की बिजली दौड़ी । मनु अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्हें ऐसा आभास हुआ कि कोई उनके हृदय रूपी धन को लूट रहा है । कवि का यह अभिप्राय है कि मनु उस ओर आकृष्ट हुए जिस ओर से उन्हें ुर वांणी सुनाई पड़ी थी । मनु का मन यह जानने को उत्सूक हो उठा कि आखिर किस कोमल कण्ठ से यह सुन्दर संगीत आ रहा है । मनु अपने मन की कौंतूहल अधिक देर तक दबाये न रह सके ।

विशेष :

'कुतूहल न रह सका फिर मौन' में विशेष विपर्यय अलंकार है।

"और देखा यह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम
कुसुम वैभव में लता समान
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम ।"

शब्दार्थ :

इन्द्रजाल - जादू, अभिराम - सुन्दर, कुसुम वैभव - फूलो का वैभव । चन्द्रिका - चांदनी, घनश्याम काले बादल ।

व्याख्या :

मनु को अपने सामने एक अत्यन्त सुन्दर नारी दिखाई दी । मनु के नेत्रों पर मोहक जादू सा डाल रही थी; आँखों के लिए बड़ी आकर्षक लगती थी । उस सुंदर स्त्री का शरीर ऐसा जान पड़ता था कि मानों वह फूलो से पूर्ण कोई लता हो या फिर काले बादलों से घिरी हुई चाँदनी हो ।

विशेष :

"चन्द्रिका से लिपटा घनश्यम" का अर्थ यह नहीं कि वह सुन्दर बाला श्यामवर्ण की थी । कवि का कहना है कि वह रमणी नील परिधान धारण किए हुई थी और इसलिए नीले वस्त्र की उपमा घनश्याम (नीले बादल) से तथा उसके शरीर की उपमा चाँदनी से दी गई है ।

यहाँ कवि प्रसाद जी ने रूप डिंत्रण की नवीन पद्धति को अपनाया है और रूपक, उपमा, रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग किया है ।

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदार ।
एक लम्बी काया, उन्मुक्त ;
मधु पवन क्रीडित ज्यों शीशुसाल
सुशोभित ही सौरभ संयुक्त ।"

शब्दार्थ :

अनुकृति - प्रतिमूर्ति । उन्मुक्त-स्वच्छन्द । मधु-पवन-वसंती हवा । क्रीड़ित - खेलता हुआ । शिशुसाल-शाल का छोटा वृक्ष ।

व्याख्या :

मनु ने जब उस सुन्दर मनोहर रमणी का सौंदर्य देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसका शरीर बाहर से जितना मनोहर हो उतना ही उसका हृदय भी

उदारता से आते-प्रोत था । कवि का मतलब यह हैं कि जिस प्रकार रमणी का लंबा शरीर कोमल था, उसी प्रकार उसका हृदय भी विशाल और सुकुमार ही था । उसका बाह्य तन और आंतरिक मन दोनों ही सरल एवं उदार थे ।

उस सुन्दरी का झूमता हुआ शरीर ऐसा प्रतीत होता था जैसे सुगन्धी से भरा हुआ शाल का छोटा वृक्ष वसंती वायु के झोंकों से हिलोरें लेता हुआ सुशोभित हो रहा हो ।

विशेष :

'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लंबी छाया उन्मुक्त' - कहकर कवि उस रमणी (श्रद्धा) के आंतरिक और बाह्य गुणों की ओर संकेत करता है । श्रद्धा हृदय का प्रतीक है और उसमें उदारता, विशालता, गंभीरता, मधुरिमा, एवं ममता आदि का गुण है ? ऋग्वेद में भी श्रद्धा का संदर्भ हृदय से माना गया है -

'श्रद्धा हृदस्य याकूय श्रद्धया विदन्ते बसु ।'

'मधुपवन क्रीड़त' में कवि ने इन पंक्तियों में उस रमणी को अपूर्व रूपवती कहा है और उसके शरीर से सुमधुर वायु अठखेलियाँ सी कर रही है । उसके हृदय में मधुर भावनाएँ विद्यमान थी ।

उपमा अलकार की योजना हुई है ।

"मृषण गांधार देश के नील
रोमवाले मेषों के चर्म
ढँक रहे थे उनका वषु कांत
बन रहा था वह कोमल कर्म ।"

शब्दार्थ :

मृषण - कोमल । मेष - भेड़ । वपु - शरीर कांत - सुन्दर । वर्म - कवच ।

व्याख्या :

आगे कवि उस रमणी (श्रद्धा) का रूप वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि उस नारी का कोमल सुन्दर शरीर गांधार देश के चिकने नील रोमवाले भेडों के चमड़े से ढका हुआ था । उसके शरीर पर चमडे का वस्त्र कोमल आवरण के समान था।

विशेष :

'मृषण गाँधार देश के नील' यहाँ कवि ने स्पष्ट करना चाहता है कि वह रमणी इतनी सुकुमार थी कि वस्त्र भी उसने अपने कोमल और सुन्दर शरीर के अनुरूप ही पहना था ।

ऋग्वेद में भी इस प्रकार के संकेत मिलते है कि वैदिक युग में भेडों के रोमवाले चर्मों को धारण करने की प्रथा थी ।

'सर्वाहमस्मि रोमशा गधार्राणामिवाविक गम्योंर्त्रक्षा' अलंकार का प्रयोग इस पद में प्रसाद जी ने किया हैं ।

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुला रहा मृदुल अध खुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग ।'

शब्दार्थ :

परिधान वस्त्र । मृदुल - कोमल ।

व्याख्या :

कवि उस रमणी (श्रद्धा) के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि उस रमणी के नीले वस्त्र में उसका सुकुमार एवं सुन्दर शरीर कहीं खुला हुआ था । सुकुमार, कोमल और मृदुल अंग इस प्रकार शेभित था, जैसे कि काले बादलों के बन में गुलाबी रंग की बिजली का फूल खिल हुए हों !

विशेषता :

इन पंक्तियों में (श्रद्धा) कामायनी की नायिका के अपूर्व सौंदर्य का चित्रण किया गया है ।

कवि ने नीले परिधान के लिए बादल और रमणी के अधखुले अंगों के लिए बिजली के फूल नामक उपमानों के प्रयोग से यह स्पष्ट किया है कि उसका शरीर अपूर्व सौंदर्य से युक्त था और उसका वर्ण गुलाबी रंग का था ।

रूपक और उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग किया है ।

"आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम
बीच जब धिरते हो घनश्याम ;
अरुण रवि मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम ।"

शब्दार्थ :

व्योम - आकाश । अरुण - लाल, रविमण्डल - सूर्यमण्डल

व्याख्या :

कवि उस रमणी के मुख का वर्णन करते हुए कहता है कि उसका मुख इतना अधिक सुन्दर था कि उसका वर्णन करना सहज नहीं है । क्योंकि उसकी सुन्दरता अवर्णनीय है। उस रमणी का सुकुमार शरीर एवं मुख इतना सुन्दर था कि उसकी शोभा वैसी ही थी जैसी कि संध्या के समय अकाश के पश्चिमि भाग के काले बादलों से घिरे हुए लाल सूर्यमण्डल की रहती है ।

विशेषता :

रमणी के मुख के लिए "अरुण रवि" और काले बालों के लिए "आनश्याम" कहा गया है । रमणी (श्रद्धा) का मुख अरुण सूर्य मण्डल की भाँति जगमग रहा है । यहाँ वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त हुआ है ।

"था कि; नव इन्द्र नीला लघु शृंग
फोड़कर धधक रही हो कांत ;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अद्यांत ।"

शब्दार्थ :

इन्द्रशील लघु शृंग नीलम के छोटे से पहाड़ की चोटी अचेह-शांत । माधवी - वसंत की रात्री ।

व्याख्या :

उस रमणी (श्रद्धा) के सुख का वर्णन करते हुए आगे कवि कहता हैं कि जिस प्रकार नवीन नीलम के छोटें से पहाड़ की चोटी पर वसंत की रात में ज्वालामुखी की लपटें अंदर ही अंदर धधकती रहती है । उसी प्रकार (श्रद्धा का) उसका मुख शोभायमान हैं ।

विशेषता :

उस रमणी (श्रद्धा) की अवस्था थोड़ी हैं, इसलिए कवि उसे 'छोटा पहाड़' कहा।

"घिरे रहे थे घुँघराले बाल
अंग अग्लंबित मुख के पास;
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास ।"

शब्दार्थ :

अंस अवलंबित कंधे पर पड़े हुए । सुधा-अमृता विधु - चन्द्रमा

व्याख्या :

उस नव युवती के मुख पर घुंघुराले बाल इस प्रकार बिखरे हुए थे कि मानों काले बादलों के सुकुमार शिशु ही चन्द्रमा के समीप पीयूष पान करने के लिए पहुँच गया हो ।

विशेषता :

कवि यहाँ घुँघुराले वालों की उपमा बादलों के छोटे-छोटे सुकुमार बच्चों से दे रहा है तथा मुख को चन्द्रमा मानता हैं। जिस तरह काले काले बादल चन्द्रमा के समीप एकत्र हो जाते है और ऐसा प्रतीत होता है मानों वे उसका सुधा पान करना चाहते हों । उसी प्रकार उस वाला के कंधे तक लटकने वाले घुँघुराले बाल उसके चन्द्रमा रूपी सुन्दर मुख का पीयूष पान करने के लिए एकत्र हुए हो ।

यहाँ पूर्णोपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

'और उस मुख पर वह मुसक्यान !

रक्त किसलय पर ले बिश्राम ;

अरुण का एक किरण अन्लान

अधिक उलसाई हो अभिराम ।'

शब्दार्थ :

मुसक्यान - मुस्कराराहट रक्त किसलय लाल कपोलें । अन्लान उज्जवल । अभिराम - सुन्दर ।

व्याख्या :

उस नव यौवन के मुख पर मन्द-मंद हँसी को देख यहीं अनुमान होता था कि संभवतः प्रभातकालीन बालारुण अर्थात् बाल रवि की कोई आभायुक्त किरणही किसी लाल कपोला पर विश्राम ले रही हो ।

विशेपता :

यहाँ अरुण अधरों के लिए "रक्त किसलय" और मुस्कान के लिए अरुण की एक अम्लान किरण" कहा गया है । रंग साम्य की दृष्टिसे यह सादृश्य योजना अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक है ।

वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार की योजना हुई है ।

"नित्य यौवन छवि से ही दीप्त

विश्व की करुण कामना मूर्ति;

स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण

प्रकट करती जो जड़ में स्पूर्ति ।"

शब्दार्थ :

नित्या यौवन छवि - हमेशा रहनेवाले यौवन की सुन्दरता । दीप्त-चमकता हुआ । करुण कामना मूर्ति-इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली । जड़ .... भावना हीन। स्फूर्ति-चेतना ।

व्याख्या -

उस रमणी को देखकर ऐसा लगता था कि मानों संपूर्ण सृष्टि की करुण भावना ने ही एकत्र होकर शरीर धारण कर लिया हो ! उसका यौवन शाश्वत है और वह चिर यौवन की शोभा से सुशोभित है । उस रमणी न केवल अत्य

सुन्दरी है अपितु अत्यंत करुणामयी भी है और उसके सौंदर्य को देखकर हर एक का मन स्वाभाविक रूप से उसकी ओर आकृष्ट हो उठता है और उसे स्पर्श करने की आकांक्षा होने लगती है । वह इतनी सुन्दर थी कि जड़ पदार्थों में भी स्फूर्ति जाग्रत (चेतना उत्पन्न) करने की शक्ति वह रखती थी।

विशेषता -

श्रद्धा का अलौकिक सुन्दरी और उसको चिर यौवना कहकर "उसे विश्व की करुण कामना मूर्ति मानकर" यह संकेत किया है कि वह संसार की समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है ।

यहाँ रूपक और वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार की योजना हुई है ।

"उषा की पहली लेखा कांत ;
मानुरी से मीगी भर मोद ;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
मोर की तरह द्युति की गोद ।"

शब्दार्थ -

लेखा - किरण । कांत - सुन्दर । माधुरी शोभा । सलज्ज - लज्जायुक्त । भोर प्रातःकाल । द्युत - चमक ।

व्याख्या -

जिस प्रकार प्रभात कालंनि तारे की अपूर्व शोभायुक्त अंकशथ्या से मधुरिमा में ओत-प्रोत उल्लासपूर्ण अपूर्ण मादकता भरी, और लज्जायुक्तं उषा की पहली सुनहली किरण उठती है उसी प्रकार उस शांत मुख पर मधुर, प्रसन्न, मस्त लजीली मुस्कान छा रही है ।

विशेषता -

इन पंक्तियों में कवि ने श्रद्ध के अरुणिम अधरों पर छई शुभ्र मुस्कान का सजीव चित्र अंकित किया है ।

वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

"कुसुम कानन अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार ;
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आचार ।"

शब्दार्थ -

कुसुम कानन अंचल - फूलों से पूर्ण वन-प्रदेश । सौरभ मन्द-मंद वायु द्वारा लायी गयी सुगंधी ।

साकार - आकार ।

व्याख्या -

वह सुकुमार वाला इतनी सुन्दर जान पड़ती थी मानो वह फूलों से भरे हुए वन प्रदेश में से बसंत की मंद-मन्द पवन के झकोरों से प्रेरित हो मकरंद के आधार लिए हुए फूलों के पराग के परमाणुओं से उसके शरीर का निर्माण किया गया हो ! मन को प्रिय लानेवाली, सुन्दर स्वच्छ नव वसंत की पूर्णिमा की रात की चाँदनी के समान थी । उस बाला के सुन्दर मुख पर रम्य, क्रीड़ायुक्त मधुरता से ओत-प्रोत मन्द मन्द उठनेवाली सुकुमार मुस्कुराहट की स्वाभाविक झलक भी दीख पड़ती थी ।

विशेषता -

कवि ने इन पंक्तियों में उस रमणी (श्रद्धा) के सौंदर्य का अतीन्द्रिय एवं अपार्थिव चित्र अंक्ति किया है । श्रद्धा के अधर की मुस्कान रेखा का निर्माण कई वस्तुओं से हुआ था। 1) वह गन्ध की लहर थी, 2) मकरंद से भीगी थी । 3) वसंत की चांदनी से धुली भी थी ।

उपमा एवं वस्तुत्प्रेक्षा अलकारों की सफल संयोजना भी हुई है ।

"कहा मनु ने नभ धरणी बीच
वना जीवन रहस्य निरुपाय;
एक उलका-सा जलता भ्रांत
शून्य में फिरता हूँ असहाय ।"

शब्दार्थ -

नभ धारणी आकाश और पृथ्वी । उल्का-टूटा हुआ तारा । भ्रांत - भटकता हुआ। शून्य - निर्जन प्रदेश ।

व्याख्या -

मनु ने उस आगन्तुक व्यक्ति की बातें सुनकर कहा कि इस आकाश और पृथ्वी के मध्य मेरा जीवन एक रहस्य बनकर रह गया है । मेरे जीवन की उल्लझन होने का कोई उपाय नहीं है । मेरा जीवन भी टूटे हुए तारा जिस प्रकार जलते-जलते सूने में बिना किसी आश्रय के भटकता फिरता है उसी प्रकार में अपने दुख की जलन को लेकर निर्जन में बिना किसी सहारे है इधर-उधर भटक रहा हूँ ।

विशेषता -

इन पंक्तियों में मनु की स्थिति का सुन्दर निरूपण हुआ है।

यहाँ पूर्णोपमा एवं श्लेष अलंकारों की योजना हुई है ।

"शैल निर्झर न बना हतभाग्य

.....

.....

आह वैसा ही हूँ पाषण्ड ।"

शब्दार्थ -

शैल - पर्वत । निर्झर - झरना । हतभाग्य - भाग्यहीन । जलनिधि समुद्र । अंक गोद ।

व्याख्या -

मनु कहता है कि मैं उस भाग्यहीन पर्वत के समान हूँ जिससे कोई झरने की धारा नहीं फूटी और मैं उस बर्फ के टुकडे के समान हूँ जो कभी नहीं पिघला और समुद्र की गोद में जाकर नहीं मिटा, अर्थात् जो पिघला कर दूसरों को सुख देनेवाली नदी न बना । मैं ऐसा ही पाखण्डी हूँ जो स्वयं को तथा दूसरों को छल कर अपने जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर रहा हूँ ।

विशेषता -

पर्वत के अस्तित्व की सार्थकता झरनों के रूप में प्रवाहित होने में ही है अन्यथा वह जड़ ही कहा जाता है । मनु कहता है कि मेरा जीवन भी उस पर्वत खण्ड के समान है जिससे स्त्रोत निर्झरित न हो सकात हिम की सार्थकता तब ही है जब वह नदी बनकर समुद्र की गोद में विलीन हो जाती है। मनु अपने जीवन को उस हिमखण्ड जैसा मानता है जो कि सरिता बनकर सागर में नहीं मिल सका। जीवन की सार्थकता तब ही है जब मानव जीवन की पूर्णता, सहृदय होने तथा प्रेम पात्र प्राप्त करने में ही है । अतः मनु अपने इस अभावग्रस्त जीवन को स्वभाविक ही निरर्थक मानते है ।

मालोपमा अलंकार की संयोजना हुई है ।

"पहले सा जीवन है व्यवस्त

.....

चल रहा हूँ बनकर अनजान"

शब्दार्थ -

यस्त उलझा हुआ ; अभिमान - झूठा घमण्ड । विस्मृति - भूल। अनजान - अभिमत ।

व्याख्या -

मनु उस आगन्तुक व्यक्ति से कह रहा हैं कि मेरा जीवन पहले जैसे उलझा हुआ है, लाख प्रयत्न करने पर भी उसे सुलझा न सका । इसके लिए क्या कारण होगा ? इसलिए मैं ऐसा सोचता हूँ कि अब उलझनों को भुला देने के सिवा और कोई मार्ग नहीं है । यही कारण है कि अब मैं एक अनभिज्ञा व्यक्ति की भाँति इधर-उधर भटक रहा हूँ ।

विशेषता -

इन पक्तियों में कवि ने मनु की मनोदश का स्वाभाविक चित्रण किया है । यहाँ पूर्णोपमा अलंकार की योजना हुई है।

"भूलता ही जाता दिन रात

.....

.....

दीन जीवन या यह संगीत ।"

शब्दार्थ -

सजल सुन्दर । कलित युक्त । अतीत जो बीत चुका है । दीन दुःखी ।

व्याख्या -

आगे मनु इस प्रकार कहता है कि मैं दिन-रात उस सुन्दर अतीत को भूलता जा रहा हूँ । मेरा अतीत कोमल, सुन्दर अभिलाषाओं से हुआ था । अब मुझे वैसा उल्लास और आनन्द मिलना दुर्लभ है ; अब मेरा जीवन दुःख से भरा हुआ है, दुःख की संगीत निरंतर गहन अंधकार की ओर बढ़ रहा है । जैसे गान की तान अंधेरी गुफा में जितनी आगे पढ़ती है उतनी ही क्षीण होती जाती है । उसी प्रकार मेरे दुःखी जीवन की सभी सुखद कल्पनाएँ धीमे दीरे निराश रूपी अंधकार में मिटती जा रही है । विशेषण विपर्यय और रूपक अलंकार की योजना हुई है ।

"क्या कहूँ, क्या मैं उदभ्रांति ?

.....

शून्यता का उजड़ा-सा राज ।"

शब्दार्थ -

उद्भ्रांत - भटकता हुआ । विवर - गुफा ।

व्याख्या -

मनु कहता है कि मैं अपने लक्ष्यहीन जीवन के बारे में क्या बताऊँ ? अब मैं इधर-उधर भटक रहा हूँ । इसलिए अब मैं यह कह नहीं पाता कि आखिर मैं स्वयं क्या हूँ ? क्योंकि मुझे अपने जीवन में सार्थकता के कुछ भी अंश नहीं दीख पड़ते। इस नीले आकाश के रिक्त स्थानों में भटकी हुई वायु की एक तरंग के समान हूँ और अब मेरा जीवन उस उजडे हुए राज्य की भाँति है जिसके चारों ओर सूनापन चा गया हो ।

विशेषता -

मनु के इस चित्रण में मनोवैज्ञानिकता है । प्रारंभ में श्रद्धा ने प्रश्न किया था - "कौन तुम ?" उसी का उत्तर मनु दे रहा हैं - क्या कहूँ ? क्या हूँ मैं ? अपने बारे में मनु कहते जाते है ।

यहाँ उपमा अलंकार की योजना हुई है ।

"एक विस्मृति का स्तूप अचेत

.....

सफलता का संकलित विलंब ।"

शब्दार्थ -

स्तूप स्तंभ । अचेत-जड़तायुक्त ।

संकलित-संचित । विलंब देरी ।

भावार्थ -

मनु कहता है कि मैं विस्मृति का एक चेतना हीन स्तंभ हूँ । अपने जीवन को मैं धुँधली-सी प्रतिबिंब मानता हूँ, क्यों कि इसमें न कोई आशा है न कोई उत्साह। इसका मतलब यही है कि मनु अपने आपको कीर्तिमान देव-जाती का क्षुद्र वंशज ही समझते है और वे रह-रह कर यही सोचते है कि सफलता प्राप्त करने में न जाने अभी कितना समय और लगे क्योंकि उन्हें चारों ओर विलंब ही विलंब देखना पड़ रहा है।

विशेषता -

इस में मालोपमा अलंकार की अनूठी अभिव्यक्ति हुई है ।

"कौन हो तुम वसंत के दूत

.....

.....

तपन में शीतल मन्द बयार ।"

शब्दार्थ -

वसंत के दूत-वसंतागमन की सूचना देनेवाली कोयल (लेकिन यहाँ जीवन में आशा प्रदान करनेवाले से है) विरस-निरस । घन तिमिर घोर निराशा । चपल बिजली, आशा । तपन-गर्मी, वेदना । बयन-मन्द हवा, कोमल एवं मधुर-वाणी ।

व्याख्या -

मनु अपने दयनीय एवं अभावग्रस्थ जीवन उस रमणी से परिचित कराने के पश्चात यह जानना चाहा कि आखिर वह रमणी कौन है ? कहाँ की रहनेवाली है ? आगे मनु उस रमणी से कहता है कि तुमने मेरे निराश जीवन में उसी प्रकार नवीन आशा और उत्साह आने की सूचना दी, जिस प्रकार पतझड़ में कोकिल वसंतागमन की सूचना देती है । तुमने मेरे घोर, निराशपूर्ण जीवन में उसी प्रकार आशा की ज्योति उत्पन्न कर दी है जिस प्रकार गंभीर अंधकार में बिजली की चमक पथभ्रष्ट को उसका मार्ग दिखाकर उसे अग्रसर होने की आशा देती है । तुमने अपनी मधुर-वाणी से मेरी वेदना को उसी प्रकार कम करदिया है, जिस प्रकार मन्द-मन्द चलनेवाली हवा गर्मी को नष्ट कर देती है । मेरे जीवन में आशा उत्पन्न करनेवाले तुम कौन हो ?

विशेषता -

इन पंक्तियों में प्रतीकात्मकता एवं लाक्षणिकता है, रुपकातिथ्योक्ति और परंपरित रूपक आदि अलकारों की योजना हुई है ।

"नखत की आशा किरण समान,

.....

कर रही मानस हलचल शांत ।"

शब्दार्थ -

नखत-तारागण, नक्षत्र । कांत - रमणीय । दिव्य - महान । महान । मानस - मान सरोवर ।

व्याख्या -

आगे मनु उस रमणी से कहता है कि मेरे सघन अंधकार जीवन में तुम विद्युत की रेखा के समान हो, तुम आशा की सुनहली किरण के समान हो । तुम्हें देखकर या तुम्हारे दर्शन से मन की हलचल उसी प्रकार शांत हो गया है जिस प्रकार किसी कोमल हृदय कवि के मन को किसी सुन्दर पवित्र कल्पना की छोटी सी लहर के उठने से शांति मिलती है ।

विशेषता -

यहाँ विशेषण विपर्यय और मानवीकरण अलंकार की सृजन हुई है ।

"भरा था मन में नव उत्साह,

.....

पिता की हूँ प्यारी संतान ।"

शब्दार्थ -

ललित कला - वस्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, काव्यकला आदि ललित कला कहा जता है ।

व्याख्या :

उस बाला (रमणी) अपना परिचय देते हुए कह रही है कि मैं अपने पिता को अत्यन्त प्यारी संतान हूँ और मेरे मन में हमेशा से ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा रही है । इस प्रकार मैं गंधर्वों के देश में रहकर अपनी अभिलाषा पूर्ण कर रही हूँ ।

विशेषता -

कवि यह बात स्पष्ट रूप से बताना चाहता है कि श्रद्धा ललीत-कलाओं में विशेष रूप से अनुराग दिखलाती है और उसके हृदय में कोमलता, उदारता एवं सहृदयता आदि भावनाएँ थी ।

घूमने का मेरा अभ्यास,

.....

.....

आह कैसी है ? क्या है मीर ?

शब्दार्थ :

मुक्ता-व्योम-तल-खुले, आकाश के नीचे । अधीर उत्सुक होकर । धरा - पृथ्वी ।

व्याख्या :

वह रमणी इस प्रकार कहने लगी स्वच्छन्द प्रकृति की होने के कारण मैं इस खुले आकाश के नीचे मेरा घूमने का अभ्यास दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही चला गया है । प्रकृति के विभिन्न दृश्यों को देखकर मेरे मन में विस्मय और आश्चर्य चकित होकर मैं अपने हृदय में उठनेवाले रहस्यों को सुलझाने की चेष्टा करती और हमेशा यह जानने को उत्सुख रहती हूँ कि आखिर इन सुन्दर वस्तुओं में विद्यमान सत्य क्या है ?

आगे रमणी कहती है कि मेरा मन प्राकृतिक दृश्यों की सुषमा निहार कर रहस्य से पूर्ण हो जाता था और कुतूहल मिटाने के लिए भी वह स्वाभाविक ही अधीर हो उठता था । अतएव हिमालय पर्वत को देखकर कभी-कभी मैं यह सोचने लगती कि आखिर धरती के हृदय में ऐसी कौन-सी पीड़ा है जिसके कारण उसके मस्तक पर चिंता की सिकुड़न पड़ गई हो !

विशेषता :

कोई भी व्यक्ति किसी व्यथा से पीडित होता है तो उसके मन में चिंताएँ उठती हैं और स्वाभाविक रूप से उसके मस्तक पर सिकुड़न-सी आ जाती है । अतः श्रद्धा हिमालय को धरती के ललाट की सिकुड़न मानती है और यहाँ पर कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा शक्ति का परिचय दिया है।

यहाँ मानवीकरण और समासोक्ति अलंकार है ।

"मधुरिमा में अपनी ही मौन ;
.....
.....
.....
आज तक घूम रहा विश्रब्ध ।"

शब्दार्थ :

मधुरिमा सौंदर्य । सोया संदेश छिपा हुआ संदेश । संमार-भण्डार । सिंधु-सागर । विश्रब्ध शांत ।

व्याख्या :

रमणी आगे कहती है कि हिमालय पर्वत के मौन सौंदर्य की ओर देखने से कभी-कभी यह आभास होने लगता है कि उसकी इस नीरव सुषमा में कोई न कोई महान और गुप्त संदेश अवश्य है । मेरे मन में यह जानने की इच्छा बलवती हो उठी कि आखिर वह संदेश क्या है ।

मेरे मन में हिमालय के मौन सौंदर्व में विद्यमान गुप्त संदेश को जानने की उत्सुकता जाग्रत हुई और मेरे पैर आगे बढ़ चले । हिमालय के मनोहर दृश्यों को देख मेरे नेत्रों की प्यास बुझ गयी । आहा ! यह पर्वत कितना वैभवशाली और मनोहरिणी है ।

वह रमणी आगे कहती है कि अचानक एक दिन हिमालय पर्वत के नीचे अपार सागर अपने पूरे वेग से उमड़ उठा और वह गरजता हुआ पर्वत की तलहटी से टकराने लगा । मैं निरुपाय सी होकर इधर-उधर निर्मीक घूम रही हूँ ।

विशेषता :

इन पंक्तियों में श्रद्धा ने उस भीषण जल प्रलय की ओर संकेत किया है । एक ओर श्रद्धा को निरुपाय कहकर उससे असहायेवं विवश जीवन की ओर संकेत किया है तो दूसरी ओर (विश्रब्ध विशेषण द्वारा श्रद्धा की दृढ़, निर्मीक एवं निश्चल मानसिक स्थिति की ओर भी संकेत किया है । वह एकाँकी एक निरुपाय होकर भी एक साहसी बाला के रूप में मनु के समक्ष आती है ?

यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न,

.....

.....

बताओं यह कैसा उद्वेग ।

शब्दार्थ :

बली यज्ञ विशेष । सजीव..... जीवित । क्लान्त..... दुःखी । हताश.....निराशा । उद्वेग.....अशांति ।

व्याख्या :

श्रद्धा मनु से कहती है कि मैं अकेले घूमते घूमते इस ओर निकल आई और मैंने यहाँ पर पड़ा हुआ बलि का कुछ अन्न देखा तब मुझे अनुमान सा होने लगा कि प्राणियों के हित में लीन कोई व्यक्ति अवश्य जीवित है ।

बलि का अन्न देखकर श्रद्धा को विश्वास हो गया कि जल-प्रलय के पश्चात् अपने जैसे ही कोई दूसरा व्यक्ति जीवित बचा है ।

श्रद्धा मनु को संबोधित करते हुए कहती है कि हे तपस्वी ! तुम क्यों इतने दुःखी और निराश जान पड़ते हो ? तुम्हारी व्यथा और वेदना इतनी अधिक क्यों है ? मनु को इतना अधिक निराश देखकर आश्चर्य होता है । वह पूछती है कि तुम इतने निराश क्यों हो ? तुम्हारी इस अशांति का कारण क्या है ?

विशेषता :

इन पंक्तियों में मनु की व्यथापूर्ण निराश स्थिति का अत्यन्त मनौवैज्ञानिक चित्रण हुआ है ।

"तेदय में क्या है नहीं अधीर,

.....

.....

भविष्यत् से बनकर अनजान ।"

शब्दार्थ :

अधीर-धैर्यहीन । लालसा इच्छा । वचिंत - अलग । अज्ञात - अपरिचित । अनुमान कर - कल्पना करके । काम - जीवन की इच्छा ।

व्याख्या :

श्रद्धा, मनु से कहती है कि हे तपस्वी ! तुम इतने अधीर क्यों बन गए हो । क्या तुम्हारे तेदय में जीवित रहने की चाह (इच्छा) शेष नहीं है । तुम्हारे हृदय की

विराग भावना ही सुन्दर आकर्षक रूप धारण कर तुम्हें धोखा दे रही है । अर्थात् तुम त्याग की ओर इसलिए विवश होकर तो नहीं मुड़ गए कि तुम्हें अनुराग नहीं मिला । यदि ऐसा हो तो तुम सावधानी रखनी चाहिए । तुम्हें जीवन से पुनः अनुराग करना चाहिए अन्यता हो सकता है कि तुम हमेशा के लिए जीवन के वास्तविक सुखों से वचिंत हो जाओगे !

यहाँ श्रद्धा जीवन के प्रति प्रेम रखने और संघर्षों से विचलित न होने की प्रेरण देती है ।

आगे मनु से श्रद्धा कहती है कि तुम पहले से ही अपरिचित मुसीबतों की कल्पना करके उनसे उत्पन्न होनेवाले दुःख के ढ़र से जीवन की इच्छा (कर्म-क्षेत्र से) झिझक रहे हो । यह तुम नहीं जानते की जिस अज्ञात (घर) भविष्य की कल्पना तुम कर रहे हो वह उससे भिन्न (सुखपूर्ण) भी हो सकता है।

18.4 श्रद्धा का चरित्र-चित्रण

कामायनी में केवल तीन ही प्रमृख पात्र है । वे है मनु श्रद्धा और इड़ा । कवि इन्हीं तीनों की कथा के माध्यम से मानव-येतना के विकास की कथा कहता है । काम-गोत्रजा कामायनी या श्रद्धा इस काव्य की नायिका है ।

श्रद्धा संपूर्ण कथा भाग की प्राण है और उसी के नाम से काव्य का नामकरण भी हुआ है । वह एक महान चेतना तथा शक्ति के रूप में प्रस्तुत हुई है । उसमें नारी-तत्व के वे सभी गुण विद्यमान है जो एक नारी में होते है ।

याम्कचार्य के "श्रद्धा श्रद्धानात्-सत्यमस्यां धीयत इति श्रद्धा" सूत्र व्याख्या के अनुसार श्रद्धा का शब्दार्थ है "सत्य को धारण करनेवाली ।" लेकिन भारतीय वाङ्मय में श्रद्धा का प्रयोग विविध अर्थों में और विविध वस्तुओं के लिए किया गया मिलता है । साधारणतः इनको तीन वर्गों में रख सकते हैं 1) दार्शनिक, 2) मनोवैज्ञानि ., 3) सास्कृतिक । दार्शनिक ग्रंथों में श्रद्धा के प्रमुख प्रयुक्त हैं - प्राण (अथर्वण वेद) दिव्य गुणों को प्राप्त करने का साधन (तैंत्तरीय ब्रह्मण) जिज्ञासी, प्रेरणा तथा विवेक (उपनिषद) ज्ञान-प्राप्ति का साधन (गीता) पाप-मुक्ताभावत (महाभारत) चित्त का अनुराग (व्यास-भाष्य) स्वर्ग एवं मोक्ष (शिवपूराण) समस्त लोकों को धारण करनेवाली पत्ता एवं इसको विश्वसातिशय

ऐश्वर्यदाता हृदय भाव, दृढ़-विश्वास तथा दृढ़ इच्छा, मन का रूपान्तर शुचिता आदि कहा गया है । पाश्चात्य मनोविज्ञान में इसके पर्याय है - फेथ, कन्फिडेन्स, रिलायन्स बिलीफ तथा टस्ट आदि । डॉ. देवज्ञ आर्य ने कहा है 'कान्फिडेन्स ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । किसी व्यक्ति की योग्यता या उत्कृष्टता किसी पदार्थ की विशेषता अथवा किसी सिद्धान्त की सत्यता पर विश्वास करना ही श्रद्धा है ।" सांस्कृतिक साहित्य में श्रद्धा को देवी और भावना (ऋग्वेद) मनोवांछित थल-प्रदाता विश्वरूपा (तैत्तरीय-उपनिषद) सत्य-संतान और विश्य का भारण-पोषण करनेवाली सत्त (तैत्तरीय उपनिषद) आदि बताया गया है । इस प्रकार श्रद्धा का प्रयोग इतिहास और विपुल है।

श्री जयशंकर प्रसाद (कामायनी आमुख) के मतानुसार "ऋग्वेद में श्रद्धा और मनु दोनों काम नाम ऋषियों की तरह मिठता है । ..... श्रद्धा काम गोत्र की बालिका है, इसलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामयानी भी कहा जाता है । ..... मनु अर्थात् मन् के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का संबन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग आता है ।"

'कामयनी' में श्रद्धा के चरित्रांकन में कवि इन सभी पूर्व सूत्रों से परिचालित रहा है - क्योंकि स्वयं कवि के कथानुसार इन्हीं सब के आधार पर 'कामायनी' की कथा-सृष्टि हुई है । हाँ. कामायनी की कथा-श्रृंखला मिलाने के लिए कहीं कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।"

श्रद्धा 'कामायनी' की सर्वाधिक, निर्मल पवित्र और उदात्त चरित्रवाली नारी है । शास्त्रीय दृष्टि से और व्यवहारिक दृष्टि से भी वही नायिका सिद्ध होती है । वह नारित्व के संपूर्ण गुणों से विभूषित है । वह अनुपम स्वर्गिक सौदर्यमयी नारी है । 'कामायनी' में श्रद्धा के रूप में एक पूर्ण नारी-सृष्टि के दर्शन करते हैं वह नारीत्व की शाश्वत प्रवृत्तियों की प्रतीक है, क्योंकी उसकी साधना पुरुष की सफलता सहायक है ।

श्रद्धा अनुपम सौंदर्यमयी नारी के रूप ने - कवि प्रसाद जीन ने श्रद्धा के अन्तः और बाह्य रूप का जो वर्णन किय है वह हिंदी में अद्‌भुत और अद्वितीय माना जाता है ।

18.4.1 श्रद्धा का बाह्य सौंदर्य -

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदा,
एक लंबी कावा, उन्मुक्त,
नील परिंधान सुकुमार खुल
रहा अधखुला अंग,
खिला हो जो बिजली का कूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग ।
आह ! वाह ! मुख पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रविमण्डल उनको भेद दिखाया ।
देता हो छवि-धाम । .....
और उस मुख पर वह मुस्क्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्रम .....

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त विश्व
की करुण कामना मूर्ति ।।
श्रद्धा का आंतरिक सौंदर्य -
"दया माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न-निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास ।"

18.4.2 श्रद्धा में नारी सुलभ गुण-दोष

श्रद्धा नारी है ; समस्त नार्योंचित गुणों का साकार रूप । उसके मानस समस्त कोमल वृत्तियाँ है । दया, ममता, करुणा, आत्मसमर्पण, धैर्य, साहस प्रेम और वात्सल्य आदि नाना वृत्तियाँ इसी का प्रमाण है । इसी कारणवश वह कभी दुःखी मनु पर करुणा करती है तो कभी कर्म का भोग भोग का कर्म की प्रेरणा देती है कभी उनसे प्रेम करती है तो कभी उनसे आत्मसमर्पण, कभी कल्पना मात्र

तक में लज्जा का अनुभव करती है और कभी विरहावस्था में धैर्य धारण करती है । स्वयं कवि ने मानो उसी के लिए -

"नारी केवल तुम श्रद्धा हो"
जैसे वचन कहे हैं ।
"इस अर्पण में कुछ और
नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ,
इतना ही सरल झलकता है ?"

वह मनु के लिए पथ प्रदर्शिका है - "यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चला उन चरणों तक दे निज संबल ।" इड़ा के लिए देवी भगवती बन जाती है । वह "कामायनी जगत की मंगल कामना अकेली ।"

18.4.3 नारी के विविध रूपों की प्रतिनिधि

कामायनी की श्रद्धा में नारी जीवन के विविध पक्ष उद्‌घाटित किए गये मिलते हैं । कौमार्य अनुरक्त, आत्मा, समर्पिता प्रेमिका, पत्नी, विरहिणी, और माता आदि रूप है। अपने इस रूपों में यह एकदम स्वाभाविक विश्वासनीयता और आदर्श पुंज है ।

18.4.4 श्रद्धा प्रेरक शक्ति

निराशा, उदास, एकाकी पुरुष मनु के जीवन में नारी श्रद्धा नव सृजन की प्रेरक शक्ति बनकर प्रवेश करती है । वह मनोविज्ञान के इस रहस्य से परिचित है कि पहले अपना सर्वस्व समर्पित करके ही पुरुष को सजीव और सक्रिय बनाया सकता है - इसलिए श्रद्धा अपने हृदय की दया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास और स्वच्छ हृदय को मनु की सेवा में समर्पित कर अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है । उन्हें जीवन का महत्व बता कर उन्हें जीवन संग्राम में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है । उनके टूटे हुए आत्म-विश्वास को पुनः विकसित कर आगे बढ़ाती है । श्रद्धा से ऐसी प्रेरणा प्राप्त कर कायर और पलायनशील बने मनु कर्म - क्षेत्र में पुनः उतर पड़ते हैं ।

18.4.5 श्रद्धा में कर्तव्यनिष्ठा

कर्तव्य-पालन के लिए श्रद्धा आद्योपांत सक्रिय मिलती है । यही कारण है कि मनु को कर्म-पथ पर प्रेरित करना समर्पण से पूर्ण लज्जानुभव करना, मातृत्व भाव से परिचालित होकर मनु की उपेक्षा सहना, मनु के आसुरी यज्ञ और पशुवध का विरोध करना, स्वप्न में मनु की दुर्दशा को देख उसको ढूँढने के लिए निकल पड़ना ; मनु की सेवा-शूशृषा करना, मनु को साथ ले कैलाश यात्रा पर जाना, त्रिपुर-रहस्य बताना और मनु को समरसता की स्थिति में पहुँचा देना आदि उसके सभी कार्य उसकी अटूट कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देते हैं ।

18.4.6 श्रद्धा एक आदर्श भारतीय नारी

अपने चारित्रक गुणों से श्रद्धा आदर्श है और भारतीय नारी के आदर्श रूप को मुखर करती है । पुरुष (मनु और मानव) के प्रति समर्पण भाव में उसका अबला और मनु खोज और मनु पथ-प्रदर्शन में उसका सबला रूप प्रतिफलित हुआ मिलता है । कवि ने श्रद्धा के रूप में प्राचीन भारत की आदर्श नारी अथवा शाश्वत नारी की कल्पना को ही साकार रूप प्रदान किया है ।

"आँसू से भीगे अंचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा ।
तुमको अपनी स्मितरेखा से
यह संधि पत्र लिखना होगा ।

+ + +

यह आज समझा तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ ।
अवयव की सुंदर कोमलता,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ ।"

+ + +

नारी । तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नभ - समतल में ।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीव के सुन्दर समतल में"

इसके अलावा श्रद्धा केवल नारी-चरित्र नहीं है । वह मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक प्रतीक भी है । मनौवैज्ञानिक दृष्टि से वह हृदय-विश्वास, सत्य-शोध भाव और सात्विक भावनाओं की प्रतीक है । चरित्र का निर्माण प्रेरण से और प्रेरणा श्रद्धा या हृदय से होती है - "छाया है विश्वास की श्रद्धा सरिता-फूल ।" दार्शनिक अर्थों में 'वह सत्य को धारण करनेवाली, उसका अन्वेषण करनेवाली और साक्षातकार करानेवाली शक्ति है । कामायनी की अंतिम तीन सर्गों में तो वह शिवशक्ति ही बन गयी है । कविवर प्रसाद जी ने कामायनी को एक अदर्श नारी का रूप प्रदान करने में सफल तो हुए हैं परंतु उसे एक अलौकिक देवी नहीं बनाया है । यह सच है कि कामायनी के अंतिम सर्गों में यद्यपि श्रद्धा के रूप में अलौकिकता और रहस्यमयता का समावेश हो जाता है, परंतु छायावादी शैली के अध्येता उसके भीतर भी नारी के उदात्ततम लौकिक रूप के ही दर्शन करते हैं । प्रसाद श्रद्धा के माध्यम से नारी के सर्वोच्च परंतु स्वाभाविक रूप को प्रस्तुत करना चाहते थे । यही कारण है कि श्रद्धा आरंभ से ही सीता - सावित्री के समान मानव दुर्बलताओं से रहित नहीं दिखाई पड़ती । वह सबसे पहले नारी है और नारी की दुर्बलताओं को जानती समझती हुई स्वीकार करती है -

"आह मैं दुर्बल, कहो क्या
ले सकूंगी दान ?"
तथा - "यह आज समझ तो पाई हूँ
मैं दुर्बलता नारी हूँ ।
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ
पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है ?"

साथ ही वह जानती है कि उसे जीवन में दुःख झेलने पडेंगे, परंतु उस स्थिति में भी सदैव मुस्कराते हुए सब कुछ सहना होगा । लज्जा उससे यही कहती है -

"आसूं से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा ।
तुमको अपनी स्मिति रेखा से यह
संधित्र लिखना होगा ।"

दुःख विरह के बीच में जब माता बनती है, तब उसका पूर्ण नारी रूप प्रस्फुटित होता है । प्रसाद उसके मातारूप में ही नारीत्व की पूर्णता मानते है । उन्होंने श्रद्धा का चरित्र का विकास उनके माँ बन जाने के बाद ही आरंभ किया है और अंत में उसे पूर्णता तक पहुंच दिया है ।

18.5 निष्कर्ष

'श्रद्धा'निस्संदेह कामायनी का सर्वश्रेष्ठ चरित्र है । डॉ. बैद्यज्ञ आर्य के अनुसार "कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के दार्शनिक अर्थ के आधार पर प्रायः सभी रूपों का ग्रहण किया है और तदनुसार उसका चित्रण करके वर्तमान युग में भी उसकी दीर्घ परंपरा को सुरक्षित और अक्षुण्ण रखा है ।"

डॉ. शिवदान सिंह चौहान के अनुसार "..... श्रद्धा मनुष्य की सहज मानवीय भावनाओं, नैतिक मूल्यों और सौहार्दता से युक्त मानव-हृदय के आस्थाशील श्रद्धा तत्व का प्रतीक है ।"

श्री विश्वनाथ लाल शौदा ने तो श्रद्धा को "आधुनिक नारी और शाश्वत नारीत्व की प्रतीक" माना हैं । डॉ. नगेन्द्र, डॉ. भोलनाथ तिवारी, डॉ. गोविंद शर्मा आदि प्रभृति आलोचकों ने श्रद्धा के चरित्र-सृष्टि की पुरि पुरी प्रशंसा करते हुए उस संपूर्ण नारीत्व का समुच्चय और उदात्ततम रूप माना है । श्रद्धा का चरित्र यथार्थ नारी-पात्र तथ प्रतीक-दोनों ही रूपों में श्रेष्ठतम और कांव्य है । वह कामायनी की नायिका ही नहीं बल्कि उसका चरित्र सर्व श्रेष्ठ चरित्र सृष्टि माना जा सकता है ।

अन्त में हम यह निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं की श्रद्धा अपने वैयक्तिक और प्रतीकात्मक दोनों ही रूपों विविध गुणों से युक्त है । श्रद्धा के चरित्र से अन्य सभी चरित्र प्रभावित है । नारी-चित्रण के कुशल चित्रों प्रसाद जी का मन भी सबसे अधिक उसीके चरित्रांकन में रमा है । शास्त्रीय दृष्टि से भी कथा का मूल विषय और चरित्र वही है । घटना को गतिशील बनाने और फलागम तक ले जाने में भी वही सर्वाधिक है श्री सुधाकर पांडे के शब्दों में - 'प्रसाद की कामायनी के चरित्रों में सर्वाधिक सुसंगत, गंभीर श्रेयस्कर, सहअस्तित्वादी मंगलविधायक प्रेरणा-पद-चरित्र श्रद्धा का है जो रचना-कौशल की दृष्टि से इतना अधिक पूर्ण, जीवन एवं सुन्दर हैं जितना पूर्व प्रसाद का कोई नारी "चरित्र नहीं ।"

प्रसाद जी की कामायनी यद्यपि एक कथा काव्य है फिर भी कवि का आशय उसे कथा कहना नहीं है । कामायनी समस्त मानव-जगत् को एक महान् संदेश देती है । यह संदेह नही है कि यह एक श्रेष्ठ महाकाव्य काल जयी कृतियों में है और हर युग में इस काव्य का अपना ही महत्व रहेगा।

18.6 बोध प्रश्न

1 श्रद्धा सर्ग की कथा वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत कीजिए।

2 श्रद्धा का चरित्र चित्रण कीजिए।

18.7 नमूने का उत्तर

1 श्रद्धा का चरित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर - कामायनी में केवल तीन ही प्रमुख पात्र है । वे है मनु श्रद्धा और इड़ा। कवि इन्हीं तीनों की कथा के माध्यम से मानव-येतना के विकास की कथा कहता है । काम-गोत्रजा कामायनी या श्रद्धा इस काव्य की नायिका है ।

श्रद्धा संपूर्ण कथा भाग की प्राण है और उसी के नाम से काव्य का नामकरण भी हुआ है । वह एक महान चेतना तथा शक्ति के रूप में प्रस्तुत हुई है । उसमें नारी-तत्व के वे सभी गुण विद्यमान है जो एक नारी में होते है ।

याम्कचार्य के "श्रद्धा श्रद्धानात्-सत्यमस्यां धीयत इति श्रद्धा" सूत्र व्याख्या के अनुसार श्रद्धा का शब्दार्थ है "सत्य को धारण करनेवाली ।" लेकिन भारतीय

वाङ्मय में श्रद्धा का प्रयोग विविध अर्थों में और विविध वस्तुओं के लिए किया गया मिलता है । साधारणतः इनको तीन वर्गों में रख सकते हैं 1) दार्शनिक, 2) मनोवैज्ञानिक, 3) सांस्कृतिक । दार्शनिक ग्रंथों में श्रद्धा के प्रमुख प्रयुक्त हैं - प्राण (अथर्वण वेद) दिव्य गुणों को प्राप्त करने का साधन (तैंत्तरीय ब्रह्मण) जिज्ञासी, प्रेरणा तथा विवेक (उपनिषद) ज्ञान-प्राप्ति का साधन (गीता) पाप-मुक्ताभावत (महाभारत) चित्त का अनुराग (व्यास-भाष्य) स्वर्ग एवं मोक्ष (शिवपूरांण) समस्त लोकों को धारण करनेवाली पत्ता एवं इसको विश्वसातिशय ऐश्वर्यदाता हृदय भाव, दृढ़-विश्वास तथा दृढ़ इच्छा, मन का रूपान्तर शुचिता आदि कहा गया है । पाश्चात्य मनोविज्ञान में इसके पर्याय है - फेथ, कन्फिडेन्स, रिलायन्स बिलीफ तथा टस्ट आदि । डॉ. देवज्ञ आर्य ने कहा है 'कान्फिडेन्स ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । किसी व्यक्ति की योग्यता या उत्कृष्टता किसी पदार्थ की विशेषता अथवा किसी सिद्धान्त की सत्यता पर विश्वास करना ही श्रद्धा है ।" सांस्कृतिक साहित्य में श्रद्धा को देवी और भावना (ऋग्वेद) मनोवांछित थल-प्रदाता विश्वरूपा (तैत्तरीय-उपनिषद) सत्य-संतान और विश्य का भारण-पोषण करनेवाली सत्त (तैत्तरीय उपनिषद) आदि बताया गया है । इस प्रकार श्रद्धा का प्रयोग इतिहास और विपुल है।

श्री जयशंकर प्रसाद (कामायनी आमुख) के मतानुसार "ऋग्वेद में श्रद्धा और मनु दोनों काम नाम ऋषियों की तरह मिठता है । ..... श्रद्धा काम गौत्र की बालिका है, इसलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामयानी भी कहा जाता है । ..... मनु अर्थात् मन् के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का संबन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग आता है ।"

'कामयनी' में श्रद्धा के चरित्रांकन में कवि इन सभी पूर्व सूत्रों से परिचालित रहा है - क्योंकि स्वयं कवि के कथानुसार इन्हीं सब के आधार पर 'कामायनी' की कथा-सृष्टि हुई है । हाँ. कामायनी की कथा-श्रृंखला मिलाने के लिए कहीं कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।"

श्रद्धा 'कामायनी' की सर्वाधिक, निर्मल पवित्र और उदात्त चरित्रवाली नारी है । शास्त्रीय दृष्टि से और व्यवहारिक दृष्टि से भी वही नायिका सिद्ध होती है । वह नारित्व के संपूर्ण गुणों से विभूषित है । वह अनुपम स्वर्गिक सौदर्यमयी नारी है । 'कामायनी' में श्रद्धा के रूप में एक पूर्ण नारी-सृष्टि के दर्शन करते हैं वह

नारीत्व की शाश्वत प्रवृत्तियों की प्रतीक है, क्योंकी उसकी साधना पुरुष की सफलता सहायक है ।

श्रद्धा अनुपम सौंदर्यमयी नारी के रूप ने - कवि प्रसाद जीन ने श्रद्धा के अन्तः और बाह्य रूप का जो वर्णन किया है वह हिंदी में अद्‌भुत और अद्वितीय माना जाता है ।

श्रद्धा का बाह्य सौंदर्य -

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदा,
एक लंबी कावा, उन्मुक्त,
नील परिंधान सुकुमार खुल
रहा अधखुला अंग,
खिला हो जो बिजली का कूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग ।
आह ! वाह ! मुख पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रविमण्डल उनको भेद दिखाया ।
देता हो छवि-धाम । .....
और उस मुख पर वह मुस्क्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्रम .....

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त विश्व
की करुण कामना मूर्ति ।।

श्रद्धा का आंतरिक सौंदर्य -

"दया माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न-निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास ।"

श्रद्धा में नारी सुलभ गुण-दोष :

श्रद्धा नारी है ; समस्त नार्योचित गुणों का साकार रूप । उसके मानस समस्त कोमल वृत्तियाँ है । दया, ममता, करुणा, आत्मसमर्पण, धैर्य, साहस प्रेम और वात्सल्य आदि नाना वृत्तियाँ इसी का प्रमाण है । इसी कारणवश वह कभी दुःखी मनु पर करुणा करती है तो कभी कर्म का भोग भोग का कर्म की प्रेरणा देती है कभी उनसे प्रेम करती है तो कभी उनसे आत्मसमर्पण, कभी कल्पना मात्र तक में लज्जा का अनुभव करती है और कभी विरहावस्था में धैर्य धारण करती है । स्वयं कवि ने मानो उसी के लिए -

"नारी केवल तुम श्रद्धा हो"
जैसे वचन कहे हैं ।
"इस अर्पण में कुछ और
नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ,
इतना ही सरल झलकता है ?"

वह मनु के लिए पथ प्रदर्शिका है - "यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चला उन चरणों तक दे निज संबल ।" इड़ा के लिए देवी भगवती बन जाती है । वह "कामायनी जगत की मंगल कामना अकेली ।"

नारी के विविध रूपों की प्रतिनिधि :

कामायनी की श्रद्धा में नारी जीवन के विविध पक्ष उद्घाटित किए गये मिलते हैं । कौमार्य अनुरक्त, आत्मा, समर्पिता प्रेमिका, पत्नी, विरहिणी, और माता आदि रूप है। अपने इस रूपों में यह एकदम स्वाभाविक विश्वासनीयता और आदर्श पुंज है ।

श्रद्धा प्रेरक शक्ति :

निराशा, उदास, एकाकी पुरुष मनु के जीवन में नारी श्रद्धा नव सृजन की प्रेरक शक्ति बनकर प्रवेश करती है । वह मनोविज्ञान के इस रहस्य से परिचित है कि पहले अपना सर्वस्व समर्पित करके ही पुरुष को सजीव और सक्रिय बनाया

सकता है - इसलिए श्रद्धा अपने हृदय की दया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास और स्वच्छ हृदय को मनु की सेवा में समर्पित कर अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है । उन्हें जीवन का महत्व बता कर उन्हें जीवन संग्राम में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है । उनके टूटे हुए आत्म-विश्वास को पुनः विकसित कर आगे बढ़ाती है । श्रद्धा से ऐसी प्रेरणा प्राप्त कर कायर और पलायनशील बने मनु कर्म - क्षेत्र में पुनः उतर पड़ते हैं ।

श्रद्धा में कर्तव्यनिष्ठा :

कर्तव्य-पालन के लिए श्रद्धा आद्योपांत सक्रिय मिलती है । यही कारण है कि मनु को कर्म-पथ पर प्रेरित करना समर्पण से पूर्ण लज्जानुभव करना, मातृत्व भाव से परिचालित होकर मनु की उपेक्षा सहना, मनु के आसुरी यज्ञ और पशुवध का विरोध करना, स्वप्न में मनु की दुर्दशा को देख उसको ढूँढने के लिए निकल पड़ना ; मनु की सेवा-शूश्रूषा करना, मनु को साथ ले कैलाश यात्रा पर जाना, त्रिपुर-रहस्य बताना और मनु को समरसता की स्थिति में पहुँचा देना आदि उसके सभी कार्य उसकी अटूट कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देते हैं ।

श्रद्धा एक आदर्श भारतीय नारी :

अपने चारित्रिक गुणों से श्रद्धा आदर्श है और भारतीय नारी के आदर्श रूप को मुखर करती है । पुरुष (मनु और मानव) के प्रति समर्पण भाव में उसका अबला और मनु खोज और मनु पथ-प्रदर्शन में उसका सबला रूप प्रतिफलित हुआ मिलता है । कवि ने श्रद्धा के रूप में प्राचीन भारत की आदर्श नारी अथवा शाश्वत नारी की कल्पना को ही साकार रूप प्रदान किया है ।

"आँसू से भीगे अंचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा ।
तुमको अपनी स्मितरेखा से
यह संधि पत्र लिखना होगा ।

+ + +

यह आज समझा तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ ।
अवयव की सुंदर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ ।"

+ + +

नारी । तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नभ - समतल में ।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीव के सुन्दर समतल में"

इसके अलावा श्रद्धा केवल नारी-चरित्र नहीं है । वह मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक प्रतीक भी है । मनौवैज्ञानिक दृष्टि से वह हृदय-विश्वास, सत्य-शोध भाव और सात्विक भावनाओं की प्रतीक है । चरित्र का निर्माण प्रेरण से और प्रेरणा श्रद्धा या हृदय से होती है - "छाया है विश्वास की श्रद्धा सरिता-फूल ।" दार्शनिक अर्थों में 'वह सत्य को धारण करनेवाली, उसका अन्वेषण करनेवाली और साक्षातकार करानेवाली शक्ति है । कामायनी की अंतिम तीन सर्गों में तो वह शिवशक्ति ही बन गयी है । कविवर प्रसाद जी ने कामायनी को एक अदर्श नारी का रूप प्रदान करने में सफल तो हुए हैं परंतु उसे एक अलौकिक देवी नहीं बनाया है । यह सच है कि कामायनी के अंतिम सर्गों में यद्यपि श्रद्धा के रूप में अलौकिकता और रहस्यमयता का समावेश हो जाता है, परंतु छायावादी शैली के अध्येता उसके भीतर भी नारी के उदात्ततम लौकिक रूप के ही दर्शन करते हैं । प्रसाद श्रद्धा के माध्यम से नारी के सर्वोच्च परंतु स्वाभाविक रूप को प्रस्तुत करना चाहते थे । यही कारण है कि श्रद्धा आरंभ से ही सीता - सावित्री के समान मानव दुर्बलताओं से रहित नहीं दिखाई पड़ती । वह सबसे पहले नारी है और नारी की दुर्बलताओं को जानती समझती हुई स्वीकार करती है -

"आह मैं दुर्बल, कहो क्या
ले सकूंगी दान ?"
तथा - "यह आज समझ तो पाई हूँ
मैं दुर्बलता नारी हूँ ।

अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ
पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है ?"

साथ ही वह जानती है कि उसे जीवन में दुःख झेलने पडेंगे, परंतु उस स्थिति में भी सदैव मुस्कराते हुए सब कुछ सहना होगा । लज्जा उससे यही कहती है -

"आसूं से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा ।
तुमको अपनी स्मिति रेखा से यह
संधित्र लिखना होगा ।"

दुःख विरह के बीच में जब माता बनती है, तब उसका पूर्ण नारी रूप प्रस्फुटित होता है । प्रसाद उसके मातारूप में ही नारीत्व की पूर्णता मानते है । उन्होंने श्रद्धा का चरित्र का विकास उनके माँ बन जाने के बाद ही आरंभ किया है और अंत में उसे पूर्णता तक पहुंच दिया है ।

'श्रद्धा'निस्संदेह कामायनी का सर्वश्रेष्ठ चरित्र है । डॉ. वेदज्ञ आर्य के अनुसार "कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के दार्शनिक अर्थ के आधार पर प्रायः सभी रूपों का ग्रहण किया है और तदनुसार उसका चित्रण करके वर्तमान युग में भी उसकी दीर्घ परंपरा को सुरक्षित और अक्षुण्ण रखा है ।"

डॉ. शिवदान सिंह चौहान के अनुसार "..... श्रद्धा मनुष्य की सहज मानवीय भावनाओं, नैतिक मूल्यों और सौहार्दता से युक्त मानव-हृदय के आस्थाशील श्रद्धा तत्व का प्रतीक है ।"

श्री विश्वनाथ लाल शौदा ने तो श्रद्धा को "आधुनिक नारी और शाश्वत नारीत्व की प्रतीक" माना हैं । डॉ. नगेन्द्र, डॉ. भोलनाथ तिवारी, डॉ. गोविंद शर्मा आदि प्रभृति आलोचकों ने श्रद्धा के चरित्र-सृष्टि की पुरि पुरी प्रशंसा करते हुए उस संपूर्ण नारीत्व का समुच्चय और उदात्ततम रूप माना है । श्रद्धा का चरित्र यथार्थ नारी-पात्र तथ प्रतीक-दोनों ही रूपों में श्रेष्ठतम और काव्य है । वह

कामायनी की नायिका ही नहीं बल्कि उसका चरित्र सर्व श्रेष्ठ चरित्र सृष्टि माना जा सकता है ।

अन्त में हम यह निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं की श्रद्धा अपने वैयक्तिक और प्रतीकात्मक दोनों ही रूपों विविध गुणों से युक्त है । श्रद्धा के चरित्र से अन्य सभी चरित्र प्रभावित है । नारी-चित्रण के कुशल चित्रों प्रसाद जी का मन भी सबसे अधिक उसीके चरित्रांकन में रमा है । शास्त्रीय दृष्टि से भी कथा का मूल विषय और चरित्र वही है । घटना को गतिशील बनाने और फलागम तक ले जाने में भी वही सर्वाधिक है श्री सुधाकर पांडे के शब्दों में - 'प्रसाद की कामायनी के चरित्रों में सर्वाधिक सुसंगत, गंभीर श्रेयस्कर, सहअस्तित्वादी मंगलविधायक प्रेरणा-पद-चरित्र श्रद्धा का है जो रचना-कौशल की दृष्टि से इतना अधिक पूर्ण, जीवन एवं सुन्दर हैं जितना पूर्व प्रसाद का कोई नारी "चरित्र नहीं ।"

प्रसाद जी की कामायनी यद्यपि एक कथा काव्य है फिर भी कवि का आशय उसे कथा कहना नहीं है । कामायनी समस्त मानव-जगत् को एक महान् संदेश देती है । यह संदेह नही है कि यह एक श्रेष्ठ महाकाव्य काल जयी कृतियों में है और हर युग में इस काव्य का अपना ही महत्व रहेगा।

18.8 सहायक पुस्तकें

1 जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी
2 साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा
3 कामायनी का समीक्षात्मक अध्ययन : प्रो पुरुषोत्तम लाल

इकाई 19
रहस्य सर्ग का व्याख्यात्मक विवेचन

इकाई की रूप रेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 रहस्य सर्ग का व्याख्या भाग

19.3 बोध प्रश्न

19.4 नमूने का उत्तर

19.5 सहायक पुस्तकें

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में रहस्य सर्ग के पद्यांशोंकी व्याख्यात्मक समीक्षा करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप -

- रहस्य सर्ग की कथा वस्तु से अवगत हो जाएँगे।
- रहस्य सर्ग की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा कर सकेंगे।
- रहस्य सर्ग में प्रयुक्त अलंकारों का परिचय प्राप्त करेंगे।
- रहस्य सर्ग के प्रमुख सप्रसंग व्याख्याओं का विवेचन प्रस्तुत कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

प्रसादजी का महाकाव्य कामायनी एक अनुपम कृति है। इसका प्रत्येक सर्ग व्याख्या की दृष्टी से अद्वितीय है। ऐसा कोई भी पद नहीं है जिसका सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत करने में कठिनाई महसूस हो।

19.2 रहस्य सर्ग का व्याख्या भाग

"छुने को अंबर मचली सी
बढ़ी जा रही सतत उँचाई;
विक्षत उसके अंग, प्रगट थे

भीषण खडड भयकरी खाँई।
रविकर हिम खडों पर पड़ कर
हिमकर कितने नये बनाता,
द्रुततर चिक्कर काट पवन भी
फिर से वही लौट आ जाता।"

शब्दार्थ-अम्बर=आकाश। सतत्=निरन्तर। व़ित=कटे-फटे, खाई-खड्ड से भरे। भयकरी=मन में भय उत्पन्न करने वाली। रविकर=सूर्य की किरणों। हिमकर=चन्द्रमा। द्रुततर=बहुत तेज।

भावार्थ-कवि कहता है-वह पर्वत अत्यन्त ऊँचा था। उसे देख ऐसा लगता था मानो उसकी ऊँचाई आकाश को छूने का हठ ठाने हुए निरन्तर ऊपर चढ़ती चली जा रही हो। उन ऊँचाई के अंक कटे-फटे थे। और उस कटने-फटने के कारण उसमें, बीच-बिच में, भयंकर खड्ड और खाइयाँ थीं जिनकी ओर देखने में मन भय से काँप उठता था।

चोटी पर छाई बर्फ की चट्टनों पर सूर्य की किरणों अगणित चन्द्रमाओं का निर्माण कर रही थी। अर्थात् जब बर्फ के टुकड़ो पर सूर्य की किरणों पड़ती थीं तो प्रतिबिंबित हो ऐसी लगती थीं मानो वहाँ अनेक चन्द्रमा चमक रहे हों। (बर्फ के कारण प्रतिविबं शीतल हैं, इसीलिए उन्हें चन्द्रमा कहा गया है।) वहाँ पवन भी बहुत तेजी से चक्कर काट कर पुनः वही लौट आता था। अर्थात् वहाँ रह-रह कर हवा के तेज झोंके उठते थे, जो ऐसे लगते थे मानो हवा इधर-उधर घूम फिर वहीं लौट आई हो।

टिप्पणी - (१) इन छन्दों में पुनः हिमालय की ऊँचाई, दुर्गमता, विचित्र हश्य आदि एक प्रकार से साधना मार्ग की दुर्गमता और वैयित्य के प्रति संकेत करते हुए प्रतीत होते है।

(२) पहले छन्द में मानविकरण और गम्योत्प्रेक्षा, तथा दूसरे छन्द में 'हिमकर' में परिकारांकुर, सूर्य द्वारा दिन में परिकरांकुर, सूर्य द्वारा दिन में अगणित चन्द्रमाओं के निर्माण में विरोधाभास, अन्तिम दो पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार है।

"वह विश्वास भरी स्मिति निश्चल श्रद्धा-मुख पर झलक उठी थी, सेवा कर-पल्लव में उसके कुछ करने को ललक उठी थी। दे अवलंब, विकल साथी को

कामायनी मधुर स्वर बोली, 'हम बढ़ दूर निकल आये अब करने का अवसर न ठिठोली। दिशा-विकंपित, पल असीम है यह अनंत सा कुछ ऊपर है, अनुभव करते हो, बोलो क्या पदतल में, सचमुच भूधर है?"

शाव्दार्थ-स्मिति=मुस्कान। कर-पल्लव=हाथ रूपी पल्लव, पल्लव के समान कोमल हाथ। ललक उठी=ललचा उठी। अवलम्ब=सहार। विकल=व्याकुल। ठिठोली=मजाक। विकंपित=काँप रही है। पल=समय। भूधर=पर्वत।

भावार्थ मनु की ऐसी क्लान्ति और निराशा भरी बातों सुन कर श्रद्धा के मुख पर आत्म विश्वास से परिपूर्ण निश्चल मुस्कान झलक उठी थी। और उसके पल्लव के समान कोमल हाथ मनु की कुछ सेवा करने को ललक उठे थे। अर्थात् श्रद्धा सेवा कर मनु के टूटते उत्साह और साहस को पुनः मतिशील बना देना चाहती थी।

इसलिए कामायनी (श्रद्धा) अपने व्याकुल साथी (मनु)को सहार देती हुई मधुर स्वर से कहने लगी अब हम लोग आगे पढ़ते हुए बहुत दूर निकल आये हैं। इसलिए अब मजाक करने का अवसर नहीं है। अर्थात् अब इतनी दूर चले आने के बाद पीछे लौट चलने की बात कहना हास्यास्पद है। तुम्हें ऐसा नही कहना चाहिए।

देखो दिशाएँ काँप रही है। समय अनन्त है। अर्थात् हम ऐसी स्थिति तक. आ पहुँचे हैं जहाँ दिशाओं की स्थिरता अर्थात् सीमा तथा समय की सीमा-दोनो समाप्त हो चुकी है। हम देश-काल की सीमाओं से मुक्त हो चुके है। अनन्त, असीम-सा दिखाई पड़ने वाला यह कुछ (आकाश ऊपर छाया हुआ है। यह बताओ कि क्या तुम सचमुच यह अनुभव कर रहे हो कि तुम्हारे पैरो के नीचे पर्वत है? अर्थात् क्या तुम सचमुच स्वयं को पर्व के ऊपर खड़ा हुआ अनुभव कर रहे हो?

टिप्पणो -(१) यहाँ श्रद्धा साधना की उस स्थति विशेष के प्रति संकेत कर रही है, जहाँ पहुँच कर साधक देश औस काल की सीमा से मुक्त हो पूर्णरुपेण आत्मश्रि हो उठता है। भौतिक आधार समाप्त हो जाता है।

'निराधार है किंतु ठहरना हम दोनों को आज यहीं है;

नियति खेल देखूँ न, सुनो अब इसका अन्य उपाय नहीं है। झाँई लगती जो, वह तुमको ऊपर उठने को है कहती इस प्रतिकूल पवन धक्के को झोंक दुसरी ही आ सहती। श्रांत पक्ष, कर नेत्र बद बस विहग-युगल से आज हम रहें, शून्य पवन बन पंख हमारे हमको दें आदार, जम रहे।"

शब्दार्थ-निराधार=शून्य एं, बिना किसी भौतिक आधार के। नियतखेल=निश्चत किया हुआ खेल, भाग्य का खेल। झाँई=ओखों के सामने अंधेरा-सा छा जाना। प्रतिकूल=विपरीत। श्रान्त=थके हुए। पक्ष=पंख। विहग=पक्षी। युगल=जोड़ा शून्य=आकाशा। आधार=सहारा। जम रहें। स्थित रहे, टिके रहें।

भावार्थ-श्रद्धा कहती है -इस समय हम निराधार स्थिति में है। अर्थात् स्थूल दृष्टि से देखने पर तो इस समय हम दोनों हिमालय जैसे सुहज आधार पर ठहरे हुए है, किन्तु वास्तविकता यह है कि हम इतनी ऊँचाई पर है कि स्वय को शून्य में ठहरा हुआ-सा अनुभव कर रहे है। (पिछले छन्द में श्रद्धा मनु से पूछती है कि क्या वह स्वयं को पर्वत के ऊपर, उसके आदार पर खड़ा हुआ अनुभव कर रहे हें, और यहाँ स्वयं ही इस बात का उत्तर देती हुई दोनों को शून्य में ठहरा हुआ घोषित कर रही है - बिल्कुल त्रिशंकु की भाँति। क्योंकि उन दोनों के लिए अब पिछे लौटना या आगे बढ़ना सम्भव नहीं रहा है।) श्रद्धा आगे कहती है किन्तु आज हम दोनों को यहीं, इसी स्थान पर ठहरना है। अब मैं भाग्य के खेल नही देखना चाहती अब यहाँ ठहरे रहने के अतिरिक्त हमारे सामने और कोई दूसरा उपाय नहीं रहा है। अर्थात् अब हम देश और काल की सीमा से मुक्त इस क्षेत्र में भाग्य के प्रभा-क्षेत्र से मुक्त हो चुके हैं।

इतने ऊपर से देखने पर तुम्हों जो झाँई-सी अनुभव होती है, ऊपर-नीचे व्याप्त शून्य को देख तुम्हारी आँखों के आगे जो अन्धकार-सा छा जाता है, वह तुम्हें और ऊपर चढ़ने के लिए कहता है। अर्थात् तुम्हें और ऊपर उठने की चुनौती दे रहा है, तुम्हारे साहस को ललकार रहा है। हमरे आगे बढ़ने के मार्ग को रोकने वाले इन आँधी के धक्के को तो कोई दूसरी ही झोंक, अर्थात् हमारे मन में भरे उत्साह की तरंग ही सहन कर लेती है। अर्थात् हमारे मन में भरे उत्साह की तरंग ही सहन कर लेती है। अर्थात् हम अपने साहस और उत्साह द्वारा इस बाधा पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

जिस प्रकार बहुत देर से उड़ते हुए पक्षी थक कर, अपने पंखों और आँखों को बन्द कर, ऊपर आकाश में ही थोड़ी देर के लिए विश्राम कर लेते हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी आज पक्षियों के समान यही इस निराधार-सी स्थिति में विश्राम करेंगे। पक्षियों के पंखों के समान ही हमारे पैर चलते-चलते थक गए है। यह शून्याकाश और पवन हमारे पंख बन कर हमें सहारा देंगे और इनका सहारा पाकर हम यहाँ टिके रहेंगे। भाव यह है कि हम आज याहाँ विश्राम कर कल फिर आगे बढ़ेगे।

टिप्पणि - (६) पहले छन्द में 'नियति खेल देखूँ न' वाक्यांश विशेष ध्यान देने योग्य है। कुछ लोगों ने इसका अर्थ-'बाग्य का खेल देखें' किया है। ऐसा अर्थ करने पर प्रसाद जी प्रतिकियावादियों के वर्ग के नियतिवादी सिद्ध होते है। परन्तु यह अर्थ भ्रामक है। श्रद्धा स्पष्ट कहाना चाहती है कि मैं नियति का खेल नही देखना चाहती। श्रद्धा के इस कथन को समझने के लिए हमें शैवागमों में वर्णित 'नियति' के स्वरूप को समझ लेना चाहिए। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है-

प्रत्यभिज्ञा-दर्शान में 'नियति' को शिव क ग्यारहवैं तत्व मान गया है। परम शिव नियति-शाक्ति की सहायता से विश्व के विभिन्न कार्यो की पूति के भिन्न-भिन्न रूप धारण किया करते है। समिष्ट रूप से शैवागमों में नियति को सम्पूर्ण विश्व का नियमन करने वाली एक अत्यन्त व्यापक और महान् शक्ति माना गया है। वह विश्व नियन्ता की ऐसी नियामिका शक्ति है, जो एक ओर तो सम्पूर्ण विश्व के जीवन-क्रम का नियोजन करती है। और साथ ही दम्भ, अहंकार आदि का नियमन भी करती है। शैवागमं में प्रापत नियति का वह एक रूप है।

इसके अतिसिक्त शैवागमों में नियति को केवल सीमित आत्मा का ही नियंत्रण करने वाली शक्ति भी बताया गया है। परन्तु जब जीवात्मा अपनी साधना द्वारा, अपनी सीमित अवस्था से ऊपर उठ शिव-तत्व की ओर अग्रसर होता है, उस समय वह नियति के नियत्रंण से सर्वथा परे और मुक्त हो जाता है। इस नियति का शासन-क्षेत्र यह परिमित विश्व ही है। इसीलिए जब जीवात्मा इस परिमित बिम्ब से ऊपर उठ अपरिमित शिव-तत्व की ओर बढ़ने लगता है, तो उस पर से नियति का नियंत्रण हट जाता है। यहाँ श्रद्धा द्वारा प्रयुक्त 'नियति' शब्द नियति के इसी रूप का द्योतक है। मनु श्रद्धा की सहायता से हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाना है। इसी कारण वह नियति की नियंत्रण-सीमा से

परे हो चुके है। इसीलिए श्रद्धा यहाँ नियति के खेल न देखने की बात कह रही है।

"नियममयी उलझन लतिका का भाव विटपि से आकर मिलना, जीवन-वन की बनी समस्या आशा नभकुसुमों का खिलना। चिर-वसंत का यह उद्‌गम है पतझर होता एक ओर है, अमृत हलाहल यहाँ मिले है। सुख दुख बँधते, एक डोर हैं।"

शब्दार्थ-नियममयी=विधि-निषेध के नियमों वाली। उलझन-लतिका=उलझा लेने वाली लता। भाव-विटप=भाव-रूपी उऋक्ष। जीवन-वन=जीवन रूपी वन। नभ-कुसुम=आकाश-कुसुम अर्थात् असम्भव, मिथ्या। चिर-वसन्त=शाश्चत वसन्त। उद्‌गम=उत्पत्ति स्थान। हलाहल=विष। जेर=धागा।

भावार्थ-श्रद्धा कहती है-जिस प्रकार वन में लताएँ वृक्षों से लिपट कर उन्हें अपने में उलझा लेती हैं, उसी प्रकार इस भाव लोंक में विधि-निषेध वाले नियम रूपी लताएँ भाव-रूपी वृक्ष से लिपट कर उन्हें अपने जाल में उलझा लेती हैं, तो उस समय आशा रूपी आकाश-कुसुमों (अमस्भव आशाओं की पूर्ति) का खिलना जीवन-रूपी वन के लिए एक समस्या बन जाता है। अर्थात् आकाश-कुसुम के समान सुन्दर आशाएँ विधि-निषेध के नियमों के जाल में उलझ जाने के कारण पूरी नहीं हो पातीं। (आकाश-कुसुम' शाब्द का प्रयोग असम्भव और कभी न पूरी होने वाली इच्छाओं के लिए किया जाता है। आकाश-कुसुम की एक मनोरम कल्पना है, जो कभी भी यथार्थ का रूप नहीं धारण कर पाती।) भाव यह है कि समाज और व्यक्ति पर लागू होने वाले नाना प्रकार के नियम भावों को स्वच्छन्द रूप से विकसित नही होने देते।

इसी का यह परिणाम है कि यह भाव-लोक एक ओर शाशव्त बसन्त का निवास-स्थान है ओर दुसरी ओर यहाँ पतझड़ भी होता रहता है। अर्थात् इस लोक में जहाँ सदैव भाव रूपी फूल खिलते रहते हैं, वहीं निराशा और दुख भी भरा रहता है। यहाँ अमृत और विष दोनों परस्पर मिले रहते हैं और सुख और दुख दोनों एक ही डोर में बँधे रहते है। भाव-जीवन को अमृत और सुख से भर देते है और भावों (इच्छाओं) की पूर्ति न होने के कारण जीवन विष के समान घातक और दुख से परिपूर्ण हो उठता है। अर्थात् भाव ही सुख-दुख के मूल कारण हैं।

जिप्पणी -(१) पहले छन्द में साँगरूपक अलंकार है। और दुसरे छन्द में रूपकातिशायोक्ति तथा यथासंख्य अलंकार है।

"सुन्दर यह तुमने दिखलाया
किंतु कौन वह श्यास देश है?
कामायनी! बताओ उसमें क्या रहस्य रहता विशेष है।"

भावार्थ -जब श्रद्धा भाव-लोक का पूरा परिचय दे चुकी तो मनु ने दूसरे श्याम रंग के आलोक बिन्दु के प्रति संकेत करते हुए श्रद्धा से कहा - 'हे कामायनी! यह तुमने जो भावलोक दिखलाया, वह सुन्दर है। किन्तु यह बताओ कि वह दूसरा श्याम रंग वाला देश कौन-सा है? इसकी क्या रहस्यमय विशेषताएँ है?"

"यहाँ प्राप्य मिलता है केवल तृप्ति नहीं, कर भेद बाँटती, बुद्धि विभूति सकल सिकता-सी प्यास लगी है ओस चाटती। न्याय, तपसे, ऐश्वर्य में पगे ये प्राणी चमकीले लगते, इस निदाघ मरु में, सूखे से स्त्रोतों के तट जैसे जगते।"

शाब्दार्त - प्राप्य=चाहा हुआ, प्राप्त करने योन्य। तृप्ति=सन्तोष। बाँटती=विभाजित, अलक-अलग कर देती है। विभूत=वैभव। सिकता=रेत, बालू, निस्सार। न्याय=उचित-अनुचित का शान। तपस=तपस्या। ऐश्वर्य=ज्ञान का ऐश्वर्य। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। मरु=रेगिस्तान। स्त्रोतों=झरनों। जगते=चमकते।

भावार्थ-ज्ञान-लोक के वर्णन को आगे बढ़ाती हुई श्रद्धा कहती है-यहाँ के निवासी केवल ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। ज्ञान की साधना करते हैं, इसलिए उन्हें वह ज्ञान तो मिल जाता है, परन्तु सन्तोष नहीं मिलता। (ज्ञान को अथाह, असीम माना गया है, इसलिए ज्ञान की साधना करने वाले चाहे कितना भी ज्ञान प्राप्त कर लें उन्हे कभी सन्तोष नहीं मिलता। उनकी ज्ञान की भूख कभी शान्त नहीं होती। वह सदैव अधिकाधिक ज्ञान-प्राप्ति करने के प्रयत्न में लगे रहते है।) यहाँ बुद्धि वर्ग-विभाजन कर व्यक्ति की क्षमता के अनुसार ज्ञान का वितरण करती है। वस्तुतः यहाँ पाया जाने वाला बुद्धि का वैभव (ज्ञान) बालू के समान निस्सार और नीरस है। इसके द्वारा सन्तोष या सुख-शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न प्यास लगने पर ओस चाटने के समान व्यर्थ है। अर्थात् जिस प्रकार प्यास लगने पर ओस की बूँदें चाटने से प्यास नही बुझ पती, उसी प्रकार ज्ञान की साधना करने से जीवन का पूर्ण सन्तोष नहीं मिल पाता। ५आन की साधना करने वाले सदैव और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्याकुल बने रहते है।

ज्ञान लोक में रहने वाले ज्ञानी लोग अपने विवेक (न्याय-बुद्धि) तपस्या (ज्ञान-साधना) और बौद्धिक ऐश्वर्य (ज्ञान) के कारण बड़े भव्य, देदीप्यमान और आकर्षक लगते है। किन्तु उनकी यह भव्यता वैसी ही खोखली और निस्सार है, जैसे ग्रीष्म ऋतु में, रेगिस्तान में बहने वाली सूखी हुई नदियों के बालू से भरे किनारे दूर से चमकते हुए जल का भ्रम उत्पन्न करते रहते हैं। भाव यह है कि जैसे गर्मी में रेगिस्तानी नदियों का जल तो सूख जाता है, परन्तु उनके बालू से भरे चमकते किनारों को देख प्यासा प्राणी वहाँ जल प्राप्त करने से जब उनके पास पहूँचता है तो उसे घोर निराशा ही होती है, उसी प्रकार ये ज्ञानी लोग दूर से बड़े भव्य और महान् प्रतीत होते हैं, परन्तु जब कोई व्याकुल मनुष्य सुख-शांति प्राप्त करने की आशा से इनके पास जाता है तो उसे ज्ञात होता है कि इनका ज्ञान निस्सार और खोखला है, जो उसकी किसी भी समस्या का समाआधान करने में असमर्थ है। अनुभूति की गरिमा न रहने के कारण ही यह ज्ञान निस्सार होता है। ('दूर के ढोल सुहावने लगते है' -यह कहाव इन ज्ञानियों पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है)

टिप्पणी - (१) यहाँ कवि भाव और कर्म से रहित ज्ञान को निस्सार और अनुपयोगी घोषित कर रहा है। ज्ञान कल्याणकारी तभी बनता है जब भाव और कर्म से समन्वित हो कर सामने आता है, एकांगी रूप में नही।

३६. "मनोभाव से कार्यक्रम के समातोलन में दतचित्त से, ये निस्पृह न्यायासन वाले चूक न सकते तनिक वित्त से! अपना परिमित पात्र लिये ये बूँद-बूँद वले निर्झर से, गंगा रहे है। जीवन का रस बैठ यहाँ पर अजर-अमर-से!"

शाब्दार्थ -मनोभाव=मन की वृत्तियाँ। कार्य-कर्म=करने योग्य कर्म, कर्तव्य। सम-तोलन=मूल्याँकन करना। दत्त-चित्त=तल्लीन रहना। निस्पृह=अनासक्त, निष्काम। न्यायासन=न्याय के आधार पर चलने वाले। चूक न सकते=गल्ती नही कर सकते। तनिक=संचमात्र भी। वित्त=धन, भौतिक सम्पदा। परिमित=सीमित। पात्र-बर्तन। निर्झर-झरना। जीवन का रस-जीवन का फल, मोक्ष। अजर-चिर-युवा, जो कभी कुब्द नहीं होता।

भावार्थ-श्रद्धा कहती है - इस ज्ञानलोक के निवासी मन की भावनाओं के अनुसार ही कर्तव्य-कर्म का मूल्याँकन करने में तल्लीन रहते हैं । अर्थात् किसी कर्म का मूल्याँकन इस आधार पर करते हैं कि कौन-सा कर्म किस मनोभाव से /

प्रेरित होकर किया गया है अथवा मानसिक भावनाओं के अनुकूल किसी व्यक्ति का कर्त्तव्य-कर्म कैसा होना चाहिए । अर्थात् बड़े ध्यान से विधि-निषेध की मर्यादा का निर्धारण करते हैं । ये ज्ञानी लोग मनोभाव और कर्त्तव्य-कर्म, दोनों के प्रति पूर्ण अनासक्त बने रह कर न्याय के आधार पर निर्णय देते हैं । इन्हें धन आदि भौतिक सम्पदा अपने कर्त्तव्य से रंचमात्र भी नहीं विचलित कर सकती । (डा. तारकनाथ बाली ने अन्तिम दो पंक्तियों का विश्लेषण करते हुए लिखा है "इसमें गूढ़ व्यंग्य है । यदि कोई दूकानदार अपनी इच्छा के अनुसार सौदा तौलता है, वह इसलिए कि उसे कम वस्तु का अधिक धन मिले अधिक धन प्राप्त करने के लिए ही वह कम वस्तु की अपनी इच्छा के अनुसार अधिक कीमत बोलते हैं। उसी प्रकार ये ज्ञानी भी अपनी वृत्तियों के अनुसार कर्मों का निर्धारण करते हैं, फिर भी लाभ से विचलित नहीं होते। यही इनका अन्तर्विरोध है । जब कर्मों का निश्चय ही अपने मन के अनुसार किया जाय तो उसमें अपने लाभ की भावना छिपी रहती है । मीमांसक अपनी इच्छानुसार कर्त्तव्य निश्चित करते हैं और वेदान्ती अपने अनुसार कर्म का मूल्याँकन करते हैं । फिर भला कैसे कहा जा सकता है कि वे अपने लाभ से चंचल नहीं होते हं ?") ज्ञानी उपेक्षणीय तथा ज्ञान के माध्यम से प्राप्त बुद्धिवैभव को सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि मानते हैं । फिर इन्हें निष्काम कैसे माना जा सकता है ।

ये ज्ञानी लोग अपना मस्तिष्क रूपी छोटा-सा पात्र लिए, बूँद-बूँद कर टपकने वाले निर्झर से जीवन का रस माँग रहे हैं और स्वयं को अजर और अमर समझ यहाँ बैठे हुए हैं । भाव यह है कि ज्ञान का अर्जन अत्यधिक श्रम-साध्य है और काल और स्थान की सीमा से परे है । ज्ञान की प्राप्ति बहुत धीरे-धीरे होती है । और ज्ञानी इसी ज्ञान को प्राप्त कर जीवन-रस, आनन्द को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं, जो उसी प्रकार असम्भव है जैसे बूँद-बूँद कर बहते झरने के नीचे बैठ अपनी प्यास बुझाना । यह छोटा-सा मानव-जीवन, जो समय की सीमा में आबद्ध है, ज्ञान के आनन्द को प्राप्त करने के लिए अपूर्ण अतः असमर्थ है । परन्तु विडम्बना यह है कि ये ज्ञानी-जन स्वयं को अजर-अमर समझने के भ्रम में डूबे निरन्तर ज्ञान-साधना में तल्लीन रहते हैं । और इन सब का परिणाम यह निकलता है कि अन्त समय भी वह प्यासे ही यहाँ से विदा हो जाते हैं, उनकी ज्ञान-पिपासा कभी शान्त नहीं हो पाती और वे जीवन का आनन्द प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं ।

"महाज्योति-रेखा-सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें,
वे संबंद्ध हुए फिर सहसा जाग
उठी थी ज्वाला जिनमें ।
नीचे ऊपर लचकीली वह
विषय वायु में धधक रही सी,
महाशून्य में ज्वाल सुनहली
सबको कहती 'नहीं नहीं' सी ।"

शब्दार्थ : महा ज्योति रेखा-सी = अत्यन्त तीव्र प्रकाश की रेखा के समान । स्मिति-मुस्कान । सम्बद्ध हुए-परस्पर मिल गए । जाग उठी-प्रकट हो उठी । विषम-प्रतिकूल । ज्वाल-लपट । महाशून्य-आकाश ।

भावार्थ : कवि कहता है - अपना कथन समाप्त कर श्रद्धा मुस्करा उठी । और उसकी वह मुस्कान अत्यन्त तीव्र प्रकाश की एक रेखा के समान उन तीनों लोकों में होकर दौड़ गई। ऐसा होते ही अचनाक वे तीनों लोक परस्पर एक दूसरे से मिल गए और उनमें अग्नि की ज्वाला सी भर गई । भाव यह है कि श्रद्धा की मुस्कान ने तीनों की भिन्नता और विषमता को नष्ट कर उन्हें समन्वित कर दिया ।

सामने से उठती प्रतिकूल वायु का सहयोग पाकर श्रद्धा की मुस्कान से उत्पन्न वह ज्वाला लहरों के समान ऊपर-नीचे उठ-गिर रही थी, लहरा रही थी । असीस आकाश में लहराती वह सुनहली ज्वाला मानो यह कह रही थी - 'नहीं नहीं ।' अर्थात् मानो यह सन्देश दे रही थी कि इच्छा, ज्ञान और क्रिया का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है ; इनमें परस्पर कोई भिन्नता न रह कर पूर्ण अभिन्नता स्थापित हो चुकी है ।

टिप्पणी - 1) श्रद्धा की मुस्कान ही त्रिपुर के तीन लोकों का पृथक् अस्तित्व समाप्त कर उन्हें परस्पर समन्वित कर देती। यही समन्वय समरसता का मूलाधार है । ऐसा करके प्रसाद जी ने मानव-जीवन में श्रद्धा के अप्रतिम महत्व का प्रतिपादन किया है । श्रद्धाजनित विश्वास ही इन तीनों क्षेत्रों की विषमताओं को दूर कर उनमें एकता और समन्वय स्थापित करता है । श्रद्धा का यह रूप शैव-तंत्रों में वर्णित त्रिपुरसुन्दरी के रूप से बहुत समानता रखता है । त्रिपुरसुन्दरी ज्ञान, किया

और इच्छा में सयन्वय स्थापित कर संसार में समरसता की स्थापना करती है यह स्थापना हो जाने पर इन तीनों की पृथक् स्थिति समाप्त हो जाती है और तीन का समन्वित रूप अखंड आनन्द को जन्म देता है ।

2) दूसरे छन्द में श्रद्धा की मुस्कान को सुनहली अग्नि-ज्वाला के समान लहराते दिखाया गया है । यह वर्णन प्रतीकात्मक है । ज्ञान का, पूर्ण और वास्तविक ज्ञान का आलोक अज्ञान-जन्य विषमता को दूर कर समरसता उत्पन्न करता है । यही पूर्ण अभेदत्व की, पूर्ण ज्ञान की स्थिति और उपलब्धि है ।

"शक्ति-तरंग प्रलय-पावक का
उस त्रिकोण में निखर-उठा सा
शृंग और डमरू निनाद बस
सकल-विश्व में बिखर उठा-सा ।
चिंतिमय चिंता धधकती अविरल
महाकाल का विषय नृत्य था,
विश्व रंग ज्वाला से भकर
करता अपना विषय कृत्य था ।"

शब्दार्थ : शक्ति-तरंग-शक्ति की लहर, लपट । प्रलय-पावक-प्रलय कर देने वाली भयंकर अग्नि । त्रिकोण-इच्छा, क्रिया और ज्ञान के लोकों का त्रिकोण । निखर उठा-सा-फैल गया, चमक उठा । श्रृंग-सिंगी नामक बाजा । निनाद-घोर ध्वनि । सकल-समस्त । चितिमय-चेतना से युक्त । अविरल-निरन्तर । महाकाल-नटराजशिव । विषम-भयानक, संहार करने वाला । विश्व-रन्ध्र-अन्तरिक्ष से अभिप्राय है । विषम कृत्य-भयानक कार्य ।

भावार्थ - कवि कहता है - इच्छा, क्रिया और ज्ञान के उन तीन लोकों के त्रिकोण में श्रद्धा की मुस्कान का स्पर्श होते ही प्रलय कर देने वाली अग्नि किसी शक्ति की तरंगें, भयंकर लपटें व्याप्त हो उठी । और उसमें उन तीनों की विषमता एवं पृथकता जल कर भस्म हो गई । उस समय सारे विश्व में नटराज शिव द्वारा बजाए जा रहे सिंगी और डमरू की ही एकमात्र ध्वनि सुनाई पड़ रही थी । (तांडव नृत्य करते समय शिव सिंगी और डमरू बजाते रहते हैं । इनकी ध्वनि तीखी और त्रास उत्पन्न कर देने वाली होती है। यहाँ शिव के संहारक-तांडव-नृत्य से ही अभिप्राय है ।)

उस समय चेतना की ज्वाला चिता की धधकती ज्वाला के समान धधक रही थी। महाकाल शिव भयंकर संहारक ताँडव नृत्य कर रहे थे। इस भयानक तांडव नृत्य ने सारे अंतरिक्ष को अपनी ज्वाला से भर दिया था और संहार का कठोर कर्म करने में व्यस्त हो रहा था। (यहाँ ज्वाला को ज्ञान का, शुद्ध ज्ञान का और विनाश को अज्ञान के कबिनाश के प्रतीक माना जाना चाहिए। इच्छा, ज्ञान और क्रिया की पारस्परिक विषमाता को भस्म करने के लिए ही यहाँ शिव के तांडव-तृत्य का आयोजन किया है।)

टिप्पणि-(६) इन दोनों में विवेक अर्थात् सद्ज्ञान को ज्वाला के समान जाग्रत दिखा कर उसकी ज्वाला में अविवेक जनित विषमता का नष्ट होना बताया गया है। यह विषमता ही दुःख-संताप को जन्म देती है और इसका विनाश हो जाने पर सर्वत्र आनन्द छा जाता है। इस ज्ञानाग्नि को विषय अर्थात् भयंकर इसलिए कहा गया है कि माया-मोह में ग्रस्त जीव को यह भयंकर प्रतित होती है, क्योकि यह उसके वैयक्तिक सुख-विलास का विरोध करती है।

19.3 बोध प्रश्न

निम्नांकित पद्यांशोंकी सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

1 "छुने को अंबर मचली सी
बढ़ी जा रही सतत उँचाई;
विक्षत उसके अंग, प्रगट थे
भीषण खडड भयकरी खाँई।
रविकर हिम खडों पर पड़ कर
हिमकर कितने नये बनाता,
द्रुततर चिक्कर काट पवन भी
फिर से वही लौट आ जाता।"

2 "महाज्योति-रेखा-सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें,
वे संबंद्ध हुए फिर सहसा जाग

उठी थी ज्वाला जिनमें ।
नीचे ऊपर लचकीली वह
विषय वायु में धधक रही सी,
महाशून्य में ज्वाल सुनहली
सबको कहती 'नहीं नहीं' सी ।"

3 "शक्ति-तरंग प्रलय-पावक का
उस त्रिकोण में निखर-उठा सा
शृंग और डमरू निनाद बस
सकल-विश्व में बिखर उठा-सा ।
चिंतिमय चिंता धधकती अविरल
महाकाल का विषय नृत्य था,
विश्व रंग ज्वाला से भकर
करता अपना विषय कृत्य था ।"

17.4 नमूने का उत्तर

प्रश्न - "छुने को अंबर मचली सी
बढ़ी जा रही सतत उँचाई;
विक्षत उसके अंग, प्रगट थे
भीषण खडड भयकरी खाँई।
रविकर हिम खडों पर पड़ कर
हिमकर कितने नये बनाता,
द्रुततर चिक्कर काट पवन भी
फिर से वही लौट आ जाता।"

उत्तर - कवि परिचय - युग प्रवर्तक, क्रांतिद्रष्टा महाकवि जयशंकर प्रसाद जी का आधुनिक हिन्दी साहित्य में सर्वोच्च स्थान है । हिन्दी काव्य, कहानी, नाटक और आलोचना के क्षेत्र को नया आयाम देने में प्रसाद जी का अपना योगदान

है । प्रसाद का जन्म काशी में सुघंनी साहु के यहाँ ई. 1883 में हुआ । उनके पिता देवीप्रसाद साहु तंबाकू के एक नए सुंगधित चूर्ण "सुंघनी" के प्रसिद्ध व्यापारी थे। माता मुन्नीदेवी, प्रसाद के प्रति विशेष प्यार करती थी चूँकि प्रसाद जी घर की सबसे छोटी संतान थे ।

देवीप्रसाद जी के घर पर ही साहित्यिक समारोहों और विद्वानों की गोष्ठियों के आयोजन बराबर हुआ करते थे परिणाम स्वरूप बचपन से ही प्रसाद जी का मन साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ ।

प्रसाद जी हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक थें । प्रसाद अपनी 12 वर्ष की आयु में माता और बड़े भाई को खो गए । इस कारण स्कूली-शिक्षा से हाथ धोना पड़ा, पर ज्ञान के प्यासे होने के कारण प्रसाद जी ने घर पर ही रहकर अंग्रेजी, संस्कृत हिन्दी, उर्दू, फारसी इत्यादि भाषाओं का अध्ययन किया ।

गंभीर स्वानुभूति, मनन-चिंतन, व्यापक-कल्पना, सूक्ष्म निरीक्षण और कुशल अभिव्यक्ति से प्रसाद का काव्य असाधारण औदात्य और सौंदर्य से मंडित है ।

प्रसाद जी ने जिस युग में अपनी साहित्य-साधना प्रारंभ की वह युग नव उन्मेष का युग था । भाषा, शैली एवं विषय-विस्तार की दृष्टि से काव्य-चेतना एक नए रूप में प्रस्फुटित हो रही थी । प्रसाद जी की प्रतिभा प्रखर होने के साथ-साथ अत्यंत व्यापक थी । कविता के अतिरिक्त प्रसाद जी ने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि साहित्य की सभी विधाओं पर अत्यंत निपुणतापूर्वक अपनी कलम चलायी है । जिस क्षेत्र में प्रसाद जी ने पाँव रखा वहाँ अपनी अमिट छाप भी छोड़ दी है । नाटकों की संख्या लगभग चौदह है। प्रसिद्ध नाटकों में से "चन्द्रगुप्त" "स्कन्दगुप्त" "अजातशत्रु" "ध्रुवस्वामिनी" हैं । उनके उपन्यास हैं - 'कंकाल', 'तितली', 'हिरावती' और उनके कहानी संग्रह - 'छाया' 'प्रतिध्वनि' 'आकाशदीप' 'आँधी' आदि हैं । 'कामायनी' 'झरना' 'आँसू' 'लहर' 'कानन कुसुम' प्रसाद जी की श्रेष्ठ काव्य-कृतियाँ हैं ।

प्रसंग - प्रस्तुत पद्यांश को जयशंकर प्रसद द्वारा रचित कामायनी के रहस्य सर्ग से लिया गया है।

शब्दार्थ - अम्बर=आकाश। सतत्=निरन्तर। व़ित=कटे-फटे, खाई-खड्ड से भरे। भयकरी=मन में भय उत्पन्न करने वाली। रविकर=सूर्य की किरणों' हिमकर=चन्द्रमा। द्रुततर=बहुत तेज।

भावार्थ - कवि कहता है-वह पर्वत अत्यन्त ऊँचा था। उसे देख ऐसा लगता था मानो उसकी ऊँचाई आकाश को छूने का हठ ठाने हुए निरन्तर ऊपर चढ़ती चली जा रही हो। उन ऊँचाई के अंक कटे-फटे थे। और उस कटने-फटने के कारण उसमें, बीच-बिच में, भयंकर खड्ड और खाइयाँ थीं जिनकी ओर देखने में मन भय से काँप उठता था।

चोटी पर छाई बर्फ की चट्टनों पर सूर्य की किरणों अगणित चन्द्रमाओं का निर्माण कर रही थी। अर्थात् जब बर्फ के टुकड़ो पर सूर्य की किरणों पड़ती थीं तो प्रतिबिंबित हो ऐसी लगती थीं मानो वहाँ अनेक चन्द्रमा चमक रहे हों। (बर्फ के कारण प्रतिविबं शीतल हैं, इसीलिए उन्हे चन्द्रमा कहा गया है।) वहाँ पवन भी बहुत तेजी से चक्कर काट कर पुनः वही लौट आता था। अर्थात् वहाँ रह-रह कर हवा के तेज झोंके उठते थे, जो ऐसे लगते थे मानो हवा इधर-उधर घूम फिर वहीं लौट आई हो।

विशेषताएँ - (१) इन छन्दों में पुनः हिमालय की ऊँचाई, दुर्गमता, विचित्र हश्य आदि एक प्रकार से साधना मार्ग की दुर्गमता और वैयित्य के प्रति संकेत करते हुए प्रतीत होते है।

(२) पहले छन्द में मानविकरण और गम्योत्प्रेक्षा, तथा दूसरे छन्द में 'हिमकर' में परिकारांकुर, सूर्य द्वारा दिन में परिकरांकुर, सूर्य द्वारा दिन में अगणित चन्द्रमाओं के निर्माण में विरोधाभास, अन्तिम दो पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार है।

19.5 सहायक पुस्तकें

1 जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी

2 साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा

3 कामायनी का समीक्षात्मक अध्ययन : प्रो पुरुषोत्तम लाल

NOTES

NOTES

NOTES

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4–060/2013–2014 ದಿನಾಂಕ : 24–09–2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು–10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

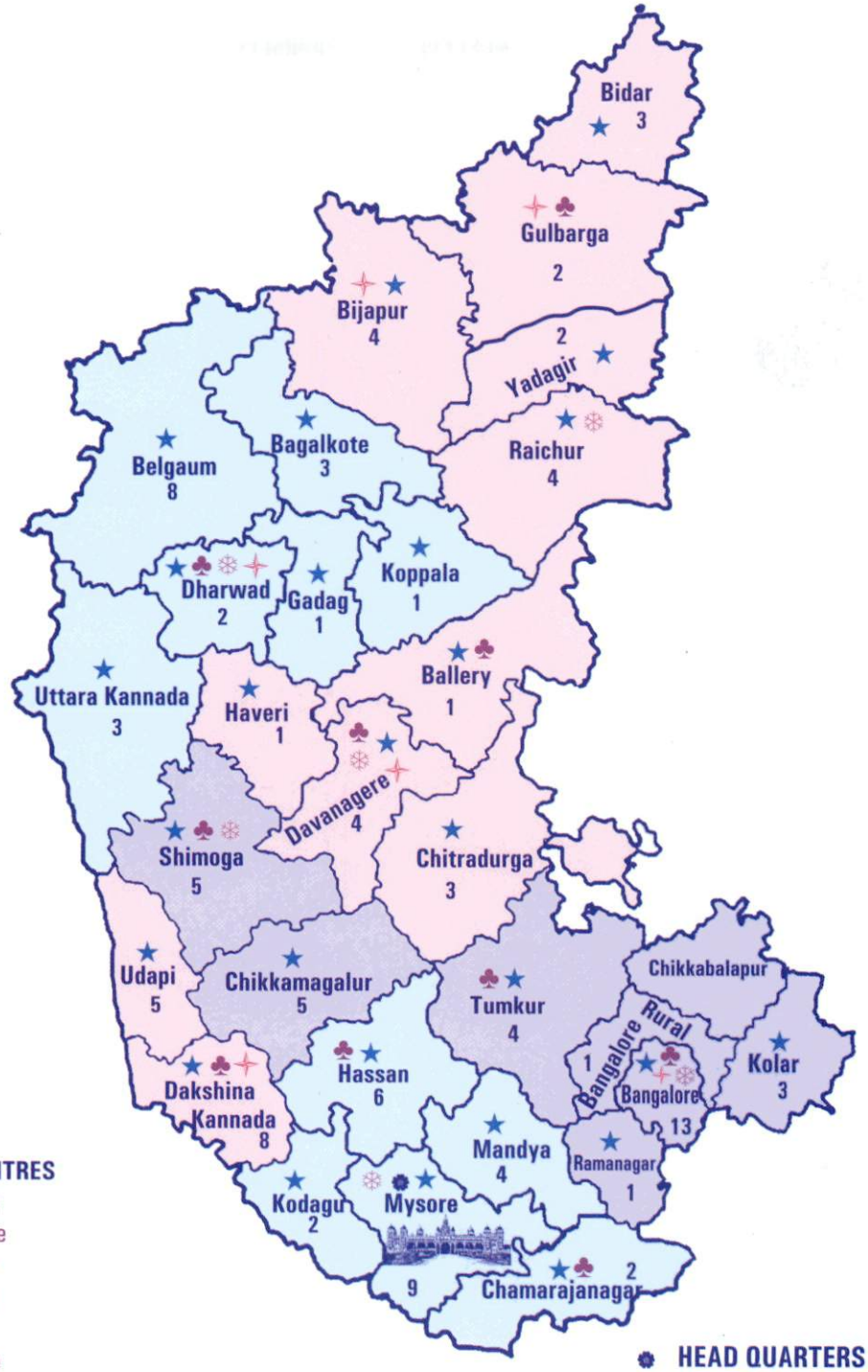

♣ REGIONAL CENTRES

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

✹ HEAD QUARTERS

★ Total Study Centres : 111

♣ Regional Centres : 10

❄ B.Ed Study Centres : 10

✦ M.Ed Study Centres : 08

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

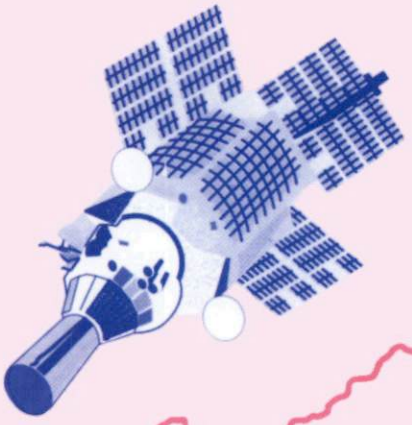

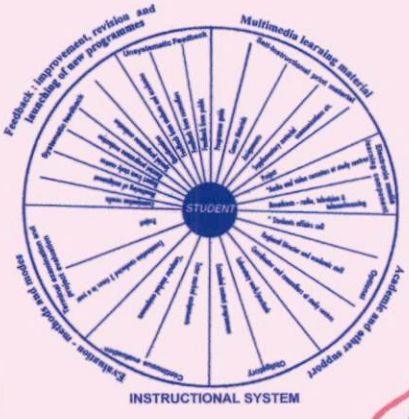

INSTRUCTIONAL SYSTEM

INSTRUCTIONAL SYSTEM